July 2026

मासिक रायबरेली

अरफ़ात किरण

इस्लाम को हर फ़ायदे पर तरजीह दीजिये

“उलमा और दानिशवरों का यह फ़र्ज़ है कि इस्लाम के फ़ायदे को हर जमाअत, हर इदारे, हर मदरसे और हर गिरोह के फ़ायदे पर तरजीह (वरीयता) दें। मैं आपसे साफ़ कहता हूँ कि अगर हमें मालूम हो कि सब जमाअतों को मिटा देना पड़ेगा, सारे निशानों को निकाल देना पड़ेगा, सारे नामों को ख़त्म कर देना पड़ेगा, सारे बोर्डों को हटा देना पड़ेगा और इस्लाम इस मुल्क में ग़ालिब रहेगा, तो हमें एक मिनट भी इसमें पस–ओ–पेश (दुविधा) नहीं होना चाहिए। हमें दीन–ओ–मिल्लत का फ़ायदा हर जमाअत से अज़ीज़ (प्रिय) होना चाहिए। सेहरा किसी के सर बंधे, सेहरा होना चाहिए। हुज़ूर (स0अ0व0) का मोजिज़ा (चमत्कार) यह था कि सहाबा–ए–किराम (रज़ि0) के दिल से यह शौक़ निकल गया था कि उनका कारनामा समझा जाए।” (दावत–ए–फ़िक्र–ओ–अमलः 86–87)

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

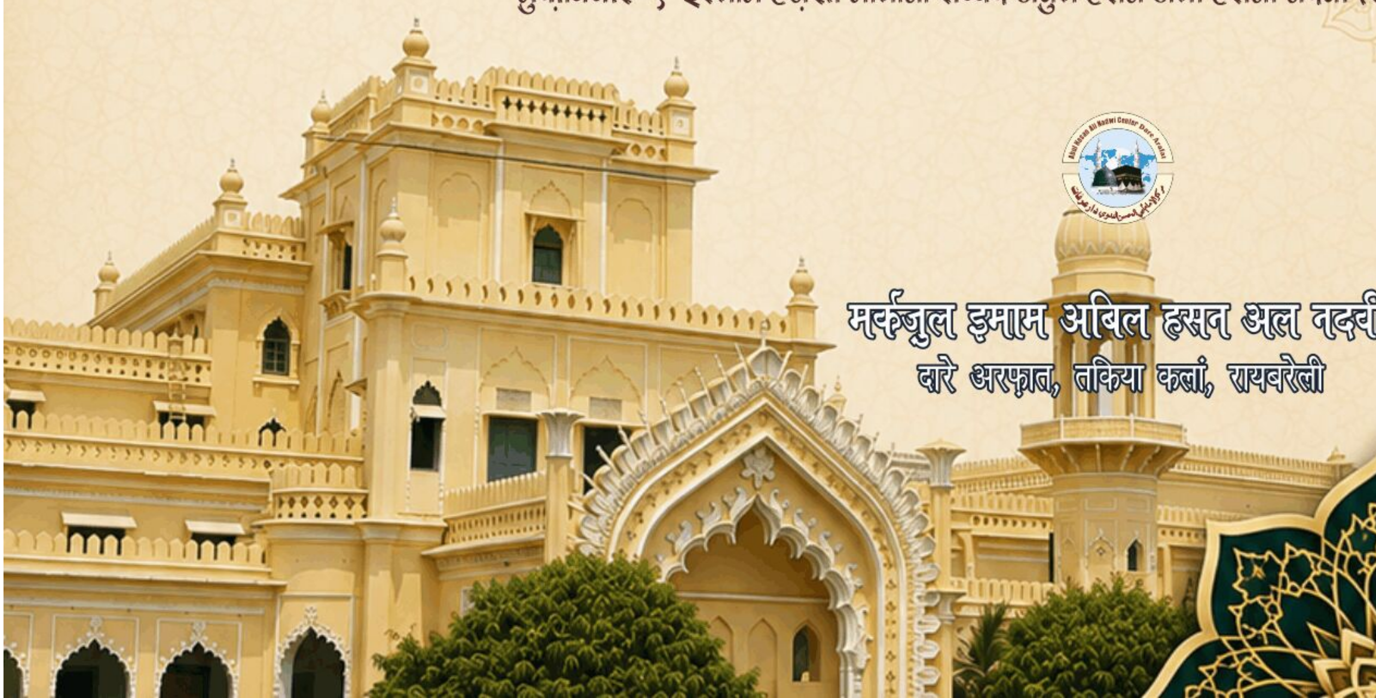

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

इस्लामी निज़ाम-ए-तालीम-ओ-तरबियत की ज़रूरत व अहमियत

"बिलाशुब्हा इससे बढ़कर ख़यानत और संगीन जुर्म कुछ नहीं हो सकता कि वह उम्मत–ए–मुस्लिमा जिसके पास आसमानी पैग़ाम की अमानत और दुनिया की क़ौमों की रहनुमाई का पूरा निज़ाम मौजूद है, वह दुनिया की दूसरी क़ौमों के सामने महज़ तमाशाई या एक हाशिया पर पड़ी हुई क़ौम बनकर रह जाए और वह इस ख़िलअत–ए–ख़िलाफ़त का जुआ (ख़िलाफ़त की औपचारिक उपाधि) अपनी गर्दन से उतार फेंके जो अल्लाह तबारका व तआला ने इसे दुनियावी क़ौमों की क़यादत करने और इस ज़मीन पर अपनी नयाबत का फ़रीज़ा अंजाम देने और इंसानी समाज की रहनुमाई करने के लिए अता फ़रमाया था।

वाक़्या यह है कि अगर इस्लामी दुनिया हक़ीक़ी तौर पर यह पक्का इरादा कर ले कि वह अपने नफ़्स की गुलामी और साम्राजी निज़ाम (साम्राज्यवाद) की जंज़ीरों से आज़ादी हासिल करेगा। करोड़ों बेगुनाहों को ज़िल्लत व रुसवाई के अज़ाब से निजात दिलाएगा। इंसानियत को उसके दुश्मनों के पंजा–ए–ज़ुल्म से आज़ाद करेगा। उसके आँसू पोंछेगा और ज़मीन पर फैली हुई इंसानी बिरादरी का हाथ पकड़कर उसे एक फैले हुए आसमान, एक पाकीज़ा व ख़ुशगवार और आसूदा हाल ज़िंदगी और दुनिया व आख़िरत की हक़ीक़ी कामयाबी की तरफ़ लाएगा तो ज़ाहिर है कि यह आसान काम नहीं बल्कि इसके लिए एक जोहदे मुसलसल, मुशक़्क़त ख़ेज़ और सब्र आज़मा कोशिश और बड़ी सतह पर क़ुर्बानी की ज़रूरत होगी। इस जानलेवा घाटी में ग़ैर मामूली बसीरत और बहुत ज़्यादा बारीक बीनी भी ज़रूरी होगी लेकिन यही जद्दोजेहद उसके अस्ल मक़ाम–व–मन्सब के लिए मौज़ूँ तरीन (प्रासंगिक) है बल्कि अगर देखा जाए तो यही चीज़ उसके वजूद का अस्ल मक़सद, उसकी बेअसत का हक़ीक़ी हदफ़ और वो बुनियादी नुक्ता है जिसपर इस्लामी इमारत की बुलन्द व बाला और भव्य इमारत तामीर है।

यह एक बड़ा काम है और हमागीर भी, इसके लिए सबसे पहले ज़रूरत है कि आलमे इस्लाम के अवाम और ख़ासकर नौजवानों के अन्दर एक नए ईमान, वलवला अंगेज़ रूह और एक ऐसी जुरअत मन्दाना व इन्क़िलाबी और फ़िक्र–ओ–शऊर को ज़िन्दगी बख़्शने वाली इस्लामी फ़िक्र की रूह फूँक दी जाए जो उन्हें ज़िंदगी के हर मैदान में ग़ैर मामूली मुतहर्रिक और सरगर्म–ए–अमल बना दे और उनके दिलों से एहसास–ए–कमतरी के इस नासूर को खुरच कर निकाल दिया जाए जिसने उन्हें दीमक की तरह खोखला कर दिया है। मुस्लिम नौजवानों में एहसास–ए–कमतरी की एक खुली वजह ईसाई मिशनरीज़ की हद से ज़्यादा सरगर्म और वो साम्राजी यल्ग़ार है जिसने उनके ज़हन व दिमाग़ को पूरी तरह मुअत्तल कर दिया है फिर सबसे बढ़कर वो निज़ाम–ए–तालीम व तरबियत भी इसका ज़िम्मेदार है जिसका बुनियादी ख़ाका मग़रिबी तर्ज़–ए–फ़िक्र के साँचों से ढलकर ही निकलता है।

मौजूदा हालात में सबसे बढ़कर ज़रूरत इस बात की है कि एक ऐसा आज़ाद तालीमी निज़ाम क़ायम किया जाए जो इस्लाम के तक़ाज़ों से पूरी तरह हमआहंग हो। वह इसकी इन सरमदी और लाज़वाल हक़ीक़तों पर पूरा उतरता हो जो न दिन व रात के बदलाव से बदलती

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: 07 जूलाई २०२६ ई० वर्ष: 18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी
मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी
मुहम्मद अमीन हसनी नदवी
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

तीन पसंदीदा बातें

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"बिलाशुब्हा अल्लाह तुम्हारे लिये तीन चीज़ों को पसंद करता है; तुम उसी की इबादत करो और उसके साथ किसी को शरीक न ठहराओ, अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ो और आपस में मुन्तशिर (बिखर) न हो जाओ।"

सही मुस्लिम: 4578

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी० 229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

कोई आया न मगर रहमत-ए-आलम...

हज़रत जिगर मुरादाबादी (रह0)

हर ज़माने में पयम्बर भी नबी भी आए
मुस्लह-ए-मिल्ली-ओ-मुल्की भी ऋि ा भी आए

हक़ के जवियंदा भी हक़ के वली भी आए
वाक़िफ़-ए-महरम-ए-असरार-ए-ख़फ़ी भी आए

आए दुनिया में बहुत पाक मुकर्रम बनकर
कोई आया न मगर रहमत-ए-आलम बनकर

किस ने जाम-ए-मय-ए-तौहीद पिलाया सबको
किस ने पैग़ाम-ए-मसावात सुनाया सबको

रास्ता किस ने हक़ीक़त का दिखाया सबको
किसने इस हुस्न का दीवाना बनाया सबको

तुम ने देखा है बहुत दफ़्तर-ए-पैग़ाम उसका
और ऐसा कोई गुज़रा हो तो लो नाम उसका

कोई सिद्दीक़ (रज़ि0) सा गुज़रा हो तो लिल्लाह दिखाओ
तुमने फ़ारूक़ (रज़ि0) सा देखा हो तो लिल्लाह दिखाओ

कोई उस्मान (रज़ि0) सा आया हो तो लिल्लाह दिखाओ
कोई हैदर (रज़ि0) सा जो पाया हो तो लिल्लाह दिखाओ

सानी-ए-अहमद-ए-ज़ीशान तो क्या लाओगे
उसकी उम्मत की मिसालें भी नहीं पाओगे

इस अंक में:

एक हो जाएं तो चमकता सूरज बन सकते हैं 3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़वा क्या है?..4

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

इद्दत और सोग के एहकाम..6

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और नदवतुल उलमा.................8

डॉक्टर उबैदुर्रहमान नदवी

एहतिजाज और सही तरीक़ा–ए–अमल.............................10

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

इल्हाद का तूफ़ान – सबब और हल.................................12

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

सहाबा किराम की मुहब्बत व जांनिसारी के कुछ नमूने.............14

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

क़याम नदवतुल उलमा और कुछ अहम शख़्सियतें.................16

अबुल हसन अली हसनी नदवी

आसान दीन मुश्किल ज़िन्दगी.......................................19

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

सम्पादकीय

एक हो जाएं तो चमकता सूरज बन सकते हैं

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुल्की सतह पर देखिए या दुनिया की सतह पर, इस वक़्त मुसलमानों के हालात ऐसे हैं कि बेसाख़्ता यह शेर ज़बान पर आता है:

ऐ ख़ासा–ए–ख़ासान–ए–रसुल! वक़्त–ए–दुआ है उम्मत पे तेरी आके अजब वक़्त पड़ा है
अग़यार की करम फरमाइयाँ अपनी जगह इसके साथ अपनों की भी नादानियाँ अपनी जगह
सादगी मुस्लिम की देख औरों की अय्यारी भी देख

एक तरफ "अल–कुफ़्र मिल्लत–ए–वाहिदह" की हक़ीक़त आशकारा है, तो दूसरी तरफ हम अपने मसाइल हल करने के बजाय उनको बढ़ाने में मशगूल हैं। उस्वा–ए–रसूल (स0अ0व0) जो हर ज़माने में हर मसले का हल है, उसको अपनाने के बजाय तरह–तरह के हल पेश किए जा रहे हैं। काश कि यह उम्मत "उम्मत–ए–वाहिदह" होती।

इख़्तिलाफ़ात का होना एक तबई (प्राकतिक) चीज़ है मगर उनको इस हद तक आगे बढ़ा देना कि हुदूद कायम न रहें और यह ख़्याल भी न रहे कि नतीजा क्या होने वाला है। उम्मत को उसका क्या खामियाज़ा भुगतना पड़ेगा। ग़ैर उसका क्या फ़ायदा उठाएँगे और बात कहाँ तक पहुँच जाएगी, यह इंतिहाई नादानी की बात है।

पूरी उम्मत–ए–मुस्लिमा जिन हालात का सामना कर रही है, उसका तकाज़ा क्या है? ज़रूरत तो इस बात की थी कि हर कीमत पर इन्तिशार से बचा जाए और इत्तिहाद कायम रखने के लिए अगर अपनी राय दबानी पड़े और ज़ाती कुछ नुकसान भी उठाना पड़े, तो इत्तिहाद के आगे उसकी कोई बड़ी कीमत नहीं थी।

कम से कम दर्जा यह था कि अपने–अपने तौर पर अफ़राद (लोग) भी और जमाअतें भी ख़िदमत–ए–दीन में मशगूल रहें। अगर किसी दूसरी जमाअत या अफ़राद से किसी बात में इत्तिफाक न हो, तो भी बजाय उसमें उलझने के मुस्बत (सकारात्मक) तरीक़े पर काम किया जाता रहे। अल्लाह तआला रास्ते खोलने वाला है।

आलमी स्तर पर और मुल्की स्तर पर देखा जाए तो काम ही कितना हो रहा है, इसमें भी अगर जगह–जगह रुकावटें पैदा की जाएँगी तो उसका नतीजा क्या होगा? हर तरफ सलाहियतों का नुक़सान होगा और उम्मत का शीराज़ा और बिखरता चला जाएगा।

अफ़सोस की बात यह है कि दीन के नाम पर अहल–ए–दीन को बाँटा जा रहा है। कोई राय क़ायम कर ली जाती है, चाहे राय क़ायम करने वाला कोई फ़र्द (व्यक्ति) हो या कोई जमाअत हो या अफराद हों, उस राय को मंज़िल मिनल्लाह समझ लिया जाता है और फिर उस पर इतना इसरार होता है कि न फिर उम्मत के इन्तिशार का ख़्याल रह जाता है और न शमातत–ए–अअदा का (दुश्मनों का उपहास)।

इस वक़्त सारी दुनिया मुसलमानों के पीछे लगी है। मुसलमानों की इंतिहाई भीषण तस्वीर दुनिया के सामने पेश की जा रही है। उसके लिए मीडिया का बेदरीग़ इस्तेमाल किया जा रहा है और उसके लिए पूरी दुनिया एक है। दूसरी तरफ हम मुसलमानों का हाल यह है कि हम उनकी मदद करने में लगे हैं और बजाय इसके कि हम अपनी सही अख़्लाकी तस्वीर दुनिया के सामने पेश करते, आपस में हम खुद आपस में झगड़ रहे हैं। यह हालात इंतिहाई तश्वीशनाक हैं। ज़रूरत इस बात की है कि अकाइद व उसूल में पूरी मज़बूती के साथ जुज़वी (आंशिक) और फ़ुरूई (गौण) मसाइल में लचीलापन अख़्तियार किया जाए और उम्मत के शीराज़े को बिखरने से बचाने के लिए मामूली बातों को नज़रअंदाज़ किया जाए, वरना खतरा इस बात का है कि जो स्पेन में हो चुका और मुसलमानों को आपस में लड़ाकर जिस तरह इस्लाम को वहाँ से उखाड़ दिया गया, तारीख़ फिर दोहराई जाए। उसका पूरा नक्शा तैयार है। अगर हम होशियार न हुए और हमने एक होकर मजबूत ईमान के तहफ्फ़ुज़ की फ़िक्र न की तो आगे आने वाले हालात सख़्त से सख़्ततर हो सकते हैं। अआज़नल्लाहु मिन्हा!

तक़्वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

शक व शुबह से एहतियात की तालीमः

عَنِ الْحَسنِ بْنِ عَلِيّ - عليه وَعلى جَدِّه وَابيه السَّلاَمُ - قَالَ: حَفِظْتُ مِنْ رَسُوْلِ اللّهِ صلى اللّهُ عليه وَسَلَّمَ: دع ما يريبك إلى ما لا يريبك

"हज़रत हसन बिन अली (रज़ि0) से मनकूल है, फ़रमाते हैंः मैंने यह बात अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) से महफ़ूज़ की कि हर वह चीज़ छोड़ दो जो तुम्हें शुब्हे में डालती है और उस चीज़ को इख़्तियार करो जो बिना शुब्हे की हो।"

(सुनन तिर्मिज़ी, अबवाब सफ़हतुल क़ियामह, बाब अक़लिहा व तवक्कुलः 2518)

यह रिवायत हज़रत हसन बिन अली (रज़ि0) से मनकूल है। इसमें एक खास इस्तिलाह इस्तेमाल हुई हैः

عليه وَعلى جَدِّه وَابيه السَّلاَمُ

यह एक इस्तिलाह है। अंबिया के लिए "अलैहिमुस्सलाम" का लफ़्ज़ इस्तिमाल होता है। मअनवी ऐतिबार से देखा जाए तो इसमें बज़ाहिर कोई हरज नहीं होना चाहिए। "अलैहिमुस्सलाम" का इस्तिमाल किसी के लिए भी किया जा सकता है। अगर देखा जाए तो लुग़्वी ऐतिबार से इसके मानी सलामती के हैं, लेकिन यह एक इस्तिलाह बन गई है और अंबिया अलैहिमुस्सलाम के लिए ख़ास है। अगर किसी और के लिए इसका इस्तेमाल किया भी जा सकता है तो तबअन किया जा सकता है जैसा कि इस रिवायत में है।

हज़रत हसन (रज़ि0) के नाना हुज़ूर अक़दस (स0अ0व0) हैं, इस मुनासिबत से अलैहिस्सलाम का इस्तेमाल हुआ है। सहाबा के लिए "रज़ियल्लाहु अन्हुम" का इस्तेमाल होता है। यह भी एक तरह की इस्तिलाह है, इसका पास व लिहाज़ रखा जाए। इसी तरह दूसरे हज़रात के लिए "रहिमहुल्लाह" या "रहमतुल्लाहि अलैह" जैसे अल्फ़ाज़ इस्तेमाल होते हैं।

इस तरतीब को मलहूज़ रखना बेहतर है, इसलिए कि यह एक तरह की इस्तिलाह बन गई है और इसमें इश्तिबाह हो सकता है। अगर किसी के लिए अलैहिस्सलाम का इस्तेमाल होगा तो शुब्हा होगा कि वह नबी है और किसी के लिए रज़ियल्लाहु अन्हुम का इस्तेमाल होगा तो शुब्ह होगा कि वह सहाबी है। बेहतर यह है कि इसमें इस तरतीब को मलहूज़ रखा जाए।

आप (स0अ0व0) की वफ़ात के वक्त हज़रत हसन (रज़ि0) की उम्र ऐसी थी कि वह तहम्मुल–ए–रिवायत की उम्र होती है। हज़रात–ए–मुहद्दिसीन चार–पाँच साल की उम्र को तहम्मुल–ए–रिवायत की उम्र क़रार देते हैं कि इस उम्र में अगर किसी ने आप (स0अ0व0) से कोई बात सुनी है तो वह नक़ल कर सकता है, उसकी बात सही मानी जाएगी और क़ाबिल–ए–एतिमाद होगी। हज़रत हसन (रज़ि0) की उम्र अगरचे ज़्यादा नहीं थी लेकिन इतनी थी कि वह तहम्मुल–ए–रिवायत की उम्र होती है, इसी लिए उन्होंने यह सीग़ा इस्तेमाल किया किः

حَفِظْتُ مِنْ رَسُوْلِ اللّهِ صلى اللّهُ عليه وَسَلَّمَ

(मैंने अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) से एक चीज़ महफ़ूज़ की)

यानि जो बात वह आगे फ़रमा रहे हैं उसके मुतअल्लिक वज़ाहत है कि यह बात मैंने महफ़ूज़ की। यह लफ़्ज़ इसी लिए इस्तिमाल किया कि वह छोटे थे। हो सकता है कोई सोचे कि वह छोटे थे, उनको क्या याद होगा। अपनी तरफ़ से तो नहीं कह रहे। तो इससे

सच्चाई के साथ, दिल के पूरे इत्मिनान व सुकून के साथ, बिना किसी खटक और बिना किसी शुब्हे के आदमी जो बात कहता है वह बात मक़बूल इन्दल्लाह भी होती है और मक़बूल इन्दन्नास भी होती है।

आप (स0अ0व0) ने यहाँ जो बात फ़रमाई यह तक़्वा का एक हिस्सा है और इसी लिए मुसन्निफ़–ए–किताब ने इस रिवायत को तक़्वा के बाब में नक़्ल किया है।

तक़्वा की जामेईयत में तीनों चीज़ें शामिल हैं, आदमी जो बात कह रहा है, तक़्वा वह बात भी चाहता है; आदमी जो अमल कर रहा है, तक़्वा वह अमल भी चाहता है; आदमी के अंदर जो कैफ़ियत पैदा होती हैं, तक़्वा वह कैफ़ियत भी चाहता है।

अगर आदमी के अंदर तक़्वा का मिज़ाज नहीं है तो जो समझ में आएगा वह कह देगा, जो मिज़ाज में आएगा वह अपनी ज़बान से निकाल देगा और जो राय क़ायम करनी होगी वह कर लेगा।

तक़्वा ऐसी चीज़ है कि उसका ताल्लुक ज़बान से भी है और उसका ताल्लुक अमल से भी है। आदमी जो अमल करे तो करने से पहले सोचे कि मैं क्या करने जा रहा हूँ? मेरा अमल सही है या ग़लत? अल्लाह को राज़ी करने वाला अमल है या नाराज़ करने वाला?

ज़बान तो बड़ी ख़तरनाक चीज़ है, ऐसी ख़तरनाक चीज़ कि दरांती की तरह चलती है। न जाने क्या–क्या काटती है और उससे क्या–क्या नुक़सान होते हैं।

ज़बान की हिफ़ाज़त अव्वलीन चीज़ों में से है, इसकी बहुत ज़्यादा ताकीद है और यह तक़्वा की बुनियादों में से है।

अगर आदमी ज़बान की हिफ़ाज़त नहीं कर पा रहा है तो तक़्वा का मिज़ाज अपना नहीं बना सकता और उसका नतीजा यह है कि वह कहीं खाई में गिर सकता है और दूसरों को खाई में गिरा सकता है।

आदमी ज़बान से जो बात कहे तो खूब सोचे और ग़ौर कर ले। ग़ौर करने के बाद ही बोले। ऐसा न हो कि कहने के बाद ग़ौर करना पड़े फिर उसको शर्मिन्दगी उठानी पड़े।

वज़ाहत भी हो रही है कि मैंने अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) से उसको महफ़ूज़ किया है यानी गोया यह बात मैं याद से कह रहा हूँ और उनकी उम्र तहम्मुल–ए–रिवायत की है, इसलिए जो बात वह फ़रमा रहे हैं वह अपनी जगह बिल्कुल सही है, क़ाबिल–ए–एतमाद है।

उन्होंने जो बात इरशाद फ़रमाई, वह अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) ने हज़रत हसन (रज़ि0) से बराहे–रास्त कही या यह कि आप (स0अ0व0) फ़रमा रहे थे और वह सुन रहे थे कि:

دع ما يريبك إلى ما لا يريبك

एक दूसरी जगह इसी रिवायत में इन अल्फ़ाज़ का इज़ाफ़ा भी है:

فإنَّ الصدقَ طُمأنينةٌ وإنَّ الكذبَ ريبَةٌ

इस रिवायत में आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि जो चीज़ तुम्हें खटके उसको छोड़कर वह चीज़ इख़्तियार करो जिसमें किसी क़िस्म की कोई खटक न हो, किसी क़िस्म की कोई ख़लिश न हो। इख़्तियार करते वक़्त तुम्हें पूरा इत्मिनान और भरोसा हो कि जो बात मैं कह रहा हूँ वह बिल्कुल सही है और इसमें कोई शुब्हा नहीं है।

आप (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमाया:

دع ما يريبك إلى ما لا يريبك

(हर वह चीज़ छोड़ दो जो तुम्हें शुब्हे में डालती है और उस चीज़ को इख़्तियार करो जो बिना शुब्हे की है)

यानि हर वह चीज़ इख़्तियार करो जिसमें किसी क़िस्म का कोई खटका नहीं।

फिर फ़रमाया:

فَإِنَّ الصِّدْقَ طُمَأْنِيْنَةٌ وَالْكَذِبَ رِيْبَة

(बिलाशुब्हा सच्चाई इत्मिनान है और झूठ आदमी को ख़लजान में डालता है)

झूठ आदमी को ख़लजान, शक–ओ–शुब्हा और परेशानी में मुब्तिला करता है। कई मर्तबा आदमी झूठ बात कह देता है यह सोचकर कि हमें कुछ फ़ायदा हो जाएगा लेकिन बाद में उसको यह एहसास होता है कि हमने यह क्या किया?

इद्दत और सोग के एहकाम

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मुअतद्दा का बतौर इलाज सुरमा लगाना:

अगर मुअतद्दा (इद्दत वाली औरत) की आँख में तकलीफ़ हो तो बतौर इलाज सुरमा लगा सकती है। अलबत्ता अगर किसी दूसरी दवा से तकलीफ़ दूर हो सकती हो तो सुरमे के बजाय दवा ही डाल लेनी चाहिए। इसलिए कि हदीस शरीफ़ में अस्लन मुअतद्दा को सुरमा लगाने से मना किया गया है:

عن أم ســـــــلمة رضي الله عنها قالت: جاء ت امرأة إلى النبي صـلى الله عليه وسـلم فقالت: يارســول الله! إن ابنتي توفي عنهازوجهاوقد اشتكت عينها

(सहीह मुस्लिम, किताबुत–तलाक़, बाब वुजूबिल इहदाद फ़ी इद्दतिल–वफ़ात: 1489, अल–बुख़ारी, किताबुत–तिब्ब, बाबुल–इस्मिद वल–कुहल: 5706, और देखिए: शामी: 3/531)

मुअतद्दा का इलाज के लिए बाहर निकलना:

अगर मुअतद्दा को कोई बीमारी हो जाए और उसका अस्पताल में ले जाकर इलाज कराना या बीमारी संगीन होने की सूरत में एडमिट कराना ज़रूरी हो तो शरअन इसकी गुंजाइश होगी, इसलिए कि फ़ुक़हा ने ज़रूरतन निकलने की इजाज़त दी है और बिला–शुब्हा यह भी एक ज़रूरत है। (शामी: 3/536)

किसी अज़ीज़ की इयादत करने के लिए या उसकी वफ़ात पर जाना:

असल यही है कि मुअतद्दा शदीद ज़रूरत के बग़ैर घर से बाहर न निकले, लेकिन फ़ुक़हा ने इलाज–मुआलजे की ज़रूरत से निकलने की इजाज़त दी है। तअज़ियत या इयादत के लिए निकलने की इजाज़त नहीं दी है। लेकिन अगर किसी क़रीबी अज़ीज़ जैसे बाप, माँ, भाई, बहन वग़ैरह की वफ़ात हो जाए, या उन जैसा कोई अज़ीज़ सख़्त बीमार हो और मुअतद्दा बीमार को देखने या मय्यत को देखने के लिए सख़्त बेचैनी महसूस कर रही हो, तो अगर उसका घर मसाफ़त–ए–सफ़र पर न हो, तो इलाज–मुआलजे के लिए निकलने पर तलाश–ए–मआश पर क़यास करते हुए यह इजाज़त दी जा सकती है कि दिन को जाकर देख आए और रात घर में गुज़ारे। (शामी: 3/536, अल–फ़तावा अल–वलवालजिय्या: 2/86)

हालत–ए–इद्दत में पर्दा:

बहुत से लोग इद्दत के दौरान पर्दे के बारे में बड़ी शिद्दत इख़्तियार करते हैं और इस शिद्दत को शरई हुक्म समझते हैं। लेकिन अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इद्दत के दौरान पर्दे का कोई ख़ुसूसी हुक्म नहीं है। नामहरमों के सामने हर हाल में पर्दे का हुक्म है और महरमों से किसी भी सूरत में पर्दे का हुक्म नहीं है।

बेटा, बाप, भाई, भतीजा, जेठ, ख़ाला ज़ाद, चचा ज़ाद और फूफी और मामूँ ज़ाद उसके नामहरम हैं। इन नामहरमों से इद्दत के दौरान भी पर्दा करना चाहिए और इद्दत के ज़माने के अलावा भी पर्दा करना चाहिए। अलबत्ता अगर उनकी घर में कसरत से आमद–ओ–रफ़्त हो, उनसे फ़ितने का कोई अंदेशा न हो, तो तन्हाई इख़्तियार किये बग़ैर चेहरा और हथेली उनके सामने खोल सकती है, बक़िया बदन बाल समेत ढाँप कर रखे। (शामी: 1/405–406)

पर्दे की यह हिदायत ख़ुद क़ुरआन मजीद में की गई है। चुनाँचे अल्लाह तआला का इरशाद है:

يٰا أَيُّهَـــــا النَّبِيُّ قُـــــل لِّأَزْوَاجِكَ وَبَنَـــــاتِكَ وَنِسَـــــاءِ الْمُؤْمِنِينَ----الخ

"ऐ नबी! अपनी बीवियों और अपनी बेटियों से और मुसलमानों की बीवियों से कह दीजिए कि वे अपनी ओढ़नियाँ अपने ऊपर लटका लिया करें।" (अल–अहज़ाब: 59)

और अल्लाह का इरशाद है:

قُل لِّلْمُؤْمِنَاتِ يَغْضُضْنَ مِنْ أَبْصَارِهِنَّ-------الخ

"और ईमान वालियों से कह दीजिए कि वे भी अपनी निगाहें नीची रखें और अपने सतर की हिफ़ाज़त करें और अपना सिंगार ज़ाहिर न करें, सिवाय उसके जो ज़ाहिर हो ही जाए, मसलन: हथेली और चेहरा और अपने सीनों पर अपनी ओढ़नियाँ डाल लें और अपना सिंगार किसी पर ज़ाहिर न होने दें, सिवाय अपने शौहरों के, या अपने बाप के, या शौहरों के बाप के, या अपने बेटों के, या अपने

शौहरों के बेटों के, या अपने भाइयों के, या भतीजों के, या भांजों के। (अल–नूरः 31)

इद्दत कहाँ गुज़ारे?

एक लम्बी हदीस में है कि आंहज़रत (स0अ0व0) ने मुअतद्दा–ए–वफ़ात को पहले दुश्वारी होने पर इसकी इजाज़त दी कि वह शौहर के घर के अलावा कहीं और इद्दत गुज़ारे, फिर फ़रमायाः

امكثي في بيتک حتى يبلغ الكتاب أجله

"अपने घर में ठहरी रहो, यहाँ तक कि इद्दत की मुद्दत पूरी हो जाए।"

(अबू दाऊद, किताबुत–तलाक़, बाब फ़िल–मुतवफ़्फ़ा अन्हा तंतकलिः 2200, तिर्मिज़ी, अब्वाबुत–तलाक़ वल–लिआन, बाब ऐन तअतद्दुल–मुतवफ़्फ़ा अन्हा ज़ौजुहाः 1204, मोअत्ता, किताबुत–तलाक़)

हज़रत आयशा (रज़ि0) से मरवी है कि हज़रत फ़ातिमा बिन्त क़ैस, जिन्हें तलाक़ दी गई थी, एक वीरान जगह में रहती थीं। उन पर ख़तरे का अंदेशा महसूस किया गया, इसलिए आंहज़रत (स0अ0व0) ने उन्हें शौहर के घर से दूसरी जगह मुन्तक़लि होने की इजाज़त दे दीः

إن فاطمة كانت فى مكان وحش (البخارى، كتاب الطلاق، باب قصة فاطمة بنت قيس: ٥٣٢٥)

इन्हीं अहादीस की बुनियाद पर फुक़हा ने लिखा है कि औरत, चाहे तलाक़ की इद्दत में हो या वफ़ात की इद्दत में, अस्ल यही है कि जिस मकान में वह शौहर के साथ रहती थी, इद्दत वहीं गुज़ारे और अगर शौहर की वफ़ात के वक़्त या तलाक़ दिए जाने के वक़्त वह कहीं और हो, तो उसे चाहिए कि शौहर के घर लौट आए और वहीं इद्दत गुज़ारे।

अलबत्ता कुछ सूरतों में फुक़हा ने शौहर के घर को छोड़कर दूसरी जगह इद्दत गुज़ारने की इजाज़त दी हैः

शौहर ने तलाक़–ए–बाइन या मुग़ल्लज़ा दी हो और वह फ़ासिक़ हो, तथा उससे ख़तरा हो कि वह गुनाह कर बैठेगा।

1– शौहर या कोई ज़ालिम उसे उस घर से निकाल दे।

2– शौहर का घर गिर जाए या उसके गिर जाने का अंदेशा हो।

3– वहाँ उसके माल के ज़ाया होने का अंदेशा हो।

4– घर किराये का हो और शौहर की वफ़ात के बाद वह किराया अदा न कर सकती हो।

5– वहाँ तन्हाई की वजह से उसे डर लगता हो।

6– इस तरह के उज़्र पेश आने पर वह वहाँ से निकल सकती है और वहाँ से क़रीब किसी जगह जाकर इद्दत गुज़ार सकती है। (शामीः 3/536, हिंदियाः 1/535)

जब इद्दत शुरु होते वक़्त सफ़र में हो?

अगर कोई औरत सफ़र कर रही हो और उसी दौरान उसके शौहर ने उसे तलाक़ दे दी हो, या शौहर का इंतिक़ाल हो जाए, तो अगर उसका घर उस जगह से मसाफ़त–ए–सफ़र (78 किलोमीटर या 83 किलोमीटर) से कम दूरी पर हो, तो हुक्म यह है कि वह घर वापस आ जाए।

और अगर घर मसाफ़त–ए–सफ़र से ज़्यादा दूरी पर हो और मंज़िल (जहाँ जाना है) मसाफ़त–ए–सफ़र से कम दूरी पर हो, या दोनों मसाफ़त–ए–सफ़र पर हों और वह वहाँ आसानी से इद्दत गुज़ार सकती हो, तो मंज़िल पर चली जाए और वहीं इद्दत गुज़ारे।

ज़ाहिर है, आम हालात में ऐसा करना मुश्किल होगा, लिहाज़ा बेहतर यही होगा कि शौहर के घर लौट आए और वहीं इद्दत गुज़ारे। (शामीः 3/538)

इसी तरह अगर वह हज के लिए एयरपोर्ट जा रही थी और उसी दौरान उसे तलाक़ दे दी गई, या शौहर का इंतिक़ाल हो गया, तो अगर अभी एयरपोर्ट या उसके रास्ते में थी, तो उसे हज का सफ़र मुल्तवी कर देना चाहिए और घर जाकर इद्दत गुज़ारनी चाहिए।

और अगर एयरपोर्ट मसाफ़त–ए–सफ़र पर या उससे ज़्यादा दूरी पर है, तो ज़ाहिर है उसके साथ कोई महरम भी होगा, इसलिए हज के लिए जा सकती है। लेकिन बेहतर यही है कि घर लौट आए और घर में इद्दत गुज़ारे।

अगर महरम साथ न हो, मसलन वह अपने शौहर ही के साथ जा रही थी और रास्ते में शौहर का इंतिक़ाल हो गया, तो घर लौटना लाज़िम होगा।

और अगर एयरपोर्ट से रवाना होने या हिजाज़ पहुँचने के बाद इद्दत वाजिब हुई, तो ज़ाहिर है आम हालात में वहाँ रहकर इद्दत गुज़ारना नामुमकिन होगा। इसलिए हज के मनासिक पूरे कर ले। बस यह एहतियात करे कि क़ियामगाह से बिला–ज़रूरत बाहर न निकले, न ज़ेवर पहने। फिर वापस आकर बाक़ी इद्दत पूरी कर ले।

लेकिन अगर किसी के लिए वहाँ इद्दत गुज़ारने का मुनासिब इंतिज़ाम हो, तो वहीं इद्दत पूरी करके वापसी करे। (शामीः 3/538–539)

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

और नदवतुल उलमा

डॉक्टर उबैदुर्रहमान नदवी

इमाम उल हिंद मौलाना अबुल कलाम आज़ाद उन तारीख़ी शख़्सियात में से हैं जिनका नाम मुल्क, क़ौम, सियासत और सहाफ़त (पत्रकारिता) की दुनिया में आज भी एक रोशन मीनार की हैसियत रखता है। वह एक ही वक़्त में मुफ़स्सिर–ए–कुरान, बेहतरीन ख़तीब, इंशा परदाज़, बाकमाल सियासत दाँ और बसीरत अफरोज़ सहाफ़ी थे, जिन्होंने अपनी तहरीरों के ज़रिए कौम की फ़िक्री रहनुमाई और ज़ेहनी बेदारी का फ़रीज़ा अंजाम दिया। उनकी सहाफ़त सिर्फ ख़बरों की तरसील या हालात की अक़ासी तक महदूद नहीं थी बल्कि उनकी तहरीरें हमागीर और फ़िक्री हुआ करती थीं जिनका मक़सद गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ कर आज़ादी की शमा रोशन करना था।

मौलाना आज़ाद की सहाफ़ती ज़िंदगी का आगाज़ ऐसे दौर में हुआ जब बर्रे–सगीर हिंद सियासी गुलामी, फ़िक्री जमूद और समाजी इंतिशार का शिकार था। इस माहौल में उन्होंने अल–हिलाल और बाद अज़ां अल–बलाग़ जैसे जराइद जारी किये जिन्होंने न सिर्फ उर्दू सहाफत को एक नया उस्लूब अता किया बल्कि मुसलमानों में सियासी शऊर, दीनी हमीय्यत और कौमी यकजहती के जज़्बात को भी फरोग़ दिया।

मौलाना ने अपने कलम को अंग्रेज़ों के इस्तिबदाद के ख़िलाफ़ ढाल बनाया जिसकी पादाश में उन्हें कैद–ओ–बंद की मशक़्क़तें भी बर्दाश्त करनी पड़ीं लेकिन वह बराबर हिंदुस्तान की आज़ादी के लिए जद्द–ओ–जहद करते रहे और अपनी तहरीरों के ज़रिया लोगों को बेदार करते रहे। मौलाना एक निडर और जरी सहाफ़ी थे जो हक को हक़ और बातिल को बातिल लिखते थे और ज़ालिम के ख़िलाफ़ उनका कलम तेग–ए–आबदार हुआ करता था। बकौल मुफ़क्किर–ए–इस्लाम सैयद अबुल हसन अली नदवी कि "वह (मौलाना अबुल कलाम आज़ाद) ऐसे मकालात तहरीर करते जो आग के कलम से तहरीर होते थे।" (अल–मुस्लिमून फिल हिंदः 181)

दारुल उलूम नदवतुल उलेमा लखनऊ को जिन मुख्तलिफ खुसूसियात की बिना पर दीगर इस्लामी इदारों के दरमियान नुमायां मकाम–ओ–मर्तबा हासिल है, उन्हीं चंद खुसूसियात में एक अहम खुसूसियत दारुल उलूम की बे–लौस और क़ाबिल–ए–क़द्र सहाफ़ती ख़िदमात हैं।

मौलाना आज़ाद खुदा दाद सलाहियतों के मालिक थे, वह एक पैदाइशी सहाफ़ी थे लेकिन सच यह है कि मौलाना आज़ाद को एक नामवर और आलमी सहाफ़ी बनाने में दारुल उलूम नदवतुल उलेमा का तर्जुमान "अन–नदवा" का अहम रोल रहा है, अल्लामा शिब्ली से मौलाना आज़ाद की मुलाकात व रफ़ाक़त और फिर उनका "अन–नदवा" के सब–एडिटर के तौर पर ख़िदमात अंजाम देने की वजह से उनको गैर–मामूली शोहरत हासिल हुई और वह आसमान–ए–सहाफत पर चमके।

बक़ौल डॉक्टर सलीमुर रहमान खां नदवी कि "मौलाना आज़ाद की इस्लामी सहाफ़त का बिल–फ़ेल आगाज़ व नशोनुमा उस वक्त से होता है जब उन्होंने नदवतुल उलेमा के आर्गन "अन–नदवा" की इदारत संभाली।"

मौलाना मोहम्मद इस्हाक़ जलीस लिखते हैं:

तहरीक–ए–नदवतुल उलेमा का तर्जुमान माहनामा "अन–नदवा" का पहला शुमारा अगस्त 1904 ईसवी मुताबिक जुमादल ऊला 1322 हिजरी को मंज़र–ए–आम पर आया, रिसाले के दो एडिटर थे; मौलाना हबीबुर रहमान खान शेरवानी और अल्लामा शिब्ली नोमानी।

इस माहनामे में उलूम–ए–इस्लामिया की तज्दीद, अक़्ल व नक़ल की तत्बीक, माकूल व मनकूल और कदीम व जदीद के मवाज़ने और अरबी निसाब–ए–तालीम पर तहकीकी मजामीन शाया होते थे, इस रिसाले ने तबका–ए–उलेमा के जमूद में हरकत पैदा की, उनके ख़्यालात में इंकलाब पैदा किया, उन्हें जदीद मबाहिस से रूशनास कराया, इस्लाम और उलूम–ए–इस्लामिया की खिदमत के नए तरीकों, जबान व उस्लूब के अंदाज और

पिराए से मुतआरिफ कराया। "अन–नदवा" का असर नौजवान उलेमा और मुंतही तलबा पर पड़ा और उन्होंने इसके तर्ज़–ए–निगारिश, उस्लूब–ए–बयान को कबूल किया, चंद ही शुमारों के बाद "अन–नदवा" ने अपनी अफादी हैसियत अहल–ए–नज़र से मनवा ली।

अन–नदवा ने मुतअद्दिद ऐसे अश्खास को रूशनास किया जो मुस्तकबिल में इल्म व फ़न, अदब व सहाफ़त और मुआशरत व सियासत के मैदान में मुमताज़ मकाम पर फाइज़ हुए, उनमें अहम शख़्स मौलाना अबुल कलाम आज़ाद हैं। अक्टूबर 1905 से मार्च 1906 तक मौलाना आज़ाद "अन–नदवा" के सब–एडिटर रहे, इस वक्त तक वह इल्मी हल्कों में रू–शनास नहीं हुए थे, नदवा में कयाम, मौलाना शिब्ली की तरबियत और अपनी खुदा दाद ज़हानत व सलाहियत की बदौलत वह बराबर तरक्की करते गए, अन–नदवा में उनके मजामीन ने उन्हें पूरे मुल्क में शोहरत बख़्शी, 1906 में वह "वकील" अमृतसर से वाबस्ता हो गए, 1912 में उन्होंने अपना शोहरा–ए–आफाक हफ्ता रोज़ा "अल–हिलाल" निकाला, इत्तेहाद–ए–इस्लामी और सियासी नज़रियात में उन पर मौलाना शिब्ली के फैज़–ए–सोहबत का असर आखिर तक नुमायां रहा।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद लिसानुल सिदक से लेकर हफ्तावार पैगाम तक तकरीबन 16 अख़बारात व जराइद की इदारत से वाबस्ता रहे। इस अर्से में उन्होंने एक बार भी अपनी नज़रियाती और फिक्री असास से गुरेज़ नहीं किया। हफ़्तावार अल–हिलाल मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की सहाफ़त का नुक्ता–ए–उरूज था और उन्होंने इसके ज़रिए मुसलमानों के अंदर अंग्रेज़ों के खिलाफ़ सूर फूंकने का काम अंजाम दिया। अल–हिलाल की इशाअत 25 हज़ार तक पहुंच गई और यह सहाफ़त का एक आला मेयार करार पाया। अंग्रेज़ों ने फिर अल–हिलाल की इशाअत पर तेग ज़नी की और आखिरकार 2 साल की इशाअत के बाद इस मकबूल–ए–आम अखबार की इशाअत बंद करनी पड़ी जिसके इज़ाले के लिए मौलाना आज़ाद ने अल–बलाग का इजरा किया।

मौलाना आज़ाद की सहाफती ज़िंदगी को तीन अदवार में तक़सीम किया जाता है; इन अदवार को मश्की दौर, इरतकाई दौर और दौर–ए–उरूज के नाम दिए गए हैं।

मश्की दौर के ज़िम में 1899 से 1905 तक को शामिल किया गया है– यह दौर "नैरंग–ए–आलम" के इजरा से "लिसानुल सिदक" की बंदी पर खत्म होता है– मौलाना आज़ाद का पहला रिसाला "नैरंग–ए–आलम" है जिसका इजरा 1899 में हुआ, उन्होंने यह गुलदस्ता शायरी की तकमील समझ कर निकाला था, इसी अर्से में मौलाना आज़ाद के अंदर मज़मून निगारी का ज़ौक भी पैदा हुआ जिसकी तकमील के लिए "अल–मिसबाह" के नाम से एक रिसाला जारी किया लेकिन वह कुछ ही अर्से जारी रहकर बंद हो गया, बाद अज़ां 1902 में मौलाना आज़ाद ने मौलाना अहमद हसन के "अहसनुल अखबार" को अपने हाथ में ले लिया।

मौलाना आज़ाद की सहाफत का इरतकाई दौर "अन–नदवा" के नायब मुदीर की हैसियत से शुरू होकर "वकील" अमृतसर के दौर–ए–सानी पर खत्म होता है, इस दौर में उन्होंने वक्त के मसाइल और इल्मी अफ़कार के बारे में जो कुछ लिखा वह पूरे एतमाद के साथ लिखा, वह "अन–नदवा" लखनऊ से 1905 के अवाखिर में वाबस्ता हुए और 1906 के इब्तिदाई महीनों में इसे छोड़कर "वकील" अमृतसर चले गए, गालिबन 1906 के इब्तिदाई महीनों में उन्होंने खुद अपना अख़बार निकालने का फैसला किया– 1912 में "अल–हिलाल" का इजरा उनके इसी ख़्वाब की ताबीर थी।

अन–नदवा से "वकील" के दौर–ए–सानी तक जो सफर उन्होंने किया था वह इरतकाई सफ़र था। अल–हिलाल के इजरा के साथ मौलाना आज़ाद की सहाफ़त का उरूज शुरू होता है– 1912 से शुरू होकर अल–हिलाल मुख़्तसर और तवील वकफों के बाद दिसंबर 1927 में खत्म होता है, इस दौर में उन्होंने पूरे एतमाद के साथ अपने कलम की जौलानियों को बुरो–ए–कार लाने का काम किया, इस दौर में उन्होंने अदब ओर सहाफत को अपने मुआसिरीन में सबसे ज़्यादा मुतास्सिर किया और अपनी तहरीरों से मुसलमानों के मज़हबी और सियासी अफ़कार में इंकलाब बरपा कर दिया। मौलाना आज़ाद की सहाफत का दौर–ए–उरूज अल–बलाग की बंदिश 1916 पर होता है जिसके बाद वह तकरीबन 11 साल तक सहाफ़त की ज़िंदगी से दूर कौमी और मिल्ली तहरीक का हिस्सा बने रहे ताहम इस दौरान कैद–ओ–बंद के ज़माने में तस्नीफ–ओ–तालीफ और मुताले में मुनहमिक रहे।

एहतिजाज और
सही तरीक़ा-ए-अमल

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

इंसानी तारीख़ इस हकीकत की गवाह है कि जब भी किसी समाज में जुल्म व नाइंसाफी, शोषण, आर्थिक तंगी या बुनियादी अधिकारों की हनन में इज़ाफ़ा हुआ, आवाम ने विभिन्न तरीकों से अपनी आवाज़ बुलंद की। कभी यह आवाज़ क़लम के ज़रिये उठी, कभी अदालतों के दरवाज़े खटखटाए गए, कभी अवामी जलसों और जलूसों का सहारा लिया गया और कभी शांतिपूर्ण विरोध के द्वारा हुक्मरानों को अपनी जिम्मेदारियों का एहसास दिलाने की कोशिश की गई। विरोध प्रदर्शन दरअसल समाज की बेचैनी और अवामी एहसासात का इज़हार होता है। अगर यह कानून, नैतिकता और अनुशासन के दायरे में रहकर किया जाए तो समाज में सकारात्मक बदलाव का जरिया बन सकता है, लेकिन अगर एहतेजाज हिंसा, तोड़–फोड़, नफ़रत और प्रतिशोध का रंग अख़्तियार कर ले तो वह सुधार के बजाय मजीद अराजकता और बदअमनी को जन्म देता है।

दुनिया की तारीख़ में ऐसे अनेक विरोध प्रदर्शन हुए जिन्होंने न सिर्फ अपने मुल्क बल्कि पूरी दुनिया की सियासत और सामाजिक ढांचे को प्रभावित किया। भारतीय उपमहाद्वीप की आज़ादी की आंदोलन में महात्मा गांधी ने अहिंसा और सविनय अवज्ञा को एहतेजाज का बुनियादी ज़रिया बनाया। नमक मार्च ने ब्रितानी हुकूमत को यह एहसास दिलाया कि पुरअमन अवामी प्रतिरोध भी एक मजबूत कूव्वत बन सकती है। इसी तरह अमेरिका में स्याहफाम नागरिकों के अधिकारों के लिए मार्टिन लूथर किंग जूनियर की नेतृत्व में चलने वाली तहरीक ने नस्लीय भेदभाव के ख़िलाफ़ एक ऐतिहासिक संघर्ष की, जिसका नतीजा अहम कानूनी सुधारों की सूरत में सामने आया। दक्षिणी अफ्रीका में नेल्सन मंडेला की जद्दोजहद ने रंगभेद प्रणाली के ख़ात्मे की राह हमवार की, जबकि पोलैंड की सॉलिडैरिटी तहरीक ने मज़दूरों के अधिकारों और लोकतांत्रिक सुधारों के लिए नई मिसाल क़ायम की।

इक्कीसवीं सदी में भी एहतजाजी तहरीकों का सिलसिला जारी रहा। अरब दुनिया में जन–जागृति की लहर, जिसे 'अरब बहार' कहा जाता है, ने कई मुल्कों की सियासी सूरत–ए–हाल को बदल दिया। हालांकि बाज मुल्कों में इसके सकारात्मक नतीजे सामने आए, लेकिन बाज जगहों पर गृहयुद्ध और सियासी राजनैतिक अस्थिरता ने यह भी साबित किया कि एहतजाज के साथ बुद्धिमत्ता, कयादत और मज़बूत इरादों का होना भी अनिवार्य है।

हिंदुस्तान भी विरोध की परंपराओं से मालामाल मुल्क है। आज़ादी की तहरीक से लेकर मौजूदा दौर तक विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सियासी मुद्दों पर आवाम ने अपने लोकतांत्रिक अधिकार का इस्तेमाल करते हुए एहतेजाज किया है। किसान आंदोलन, भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन, महिलाओं के अधिकारों के लिए प्रदर्शन और नौजवानों की जानिब से रोज़गार और परीक्षा की पारदर्शिता के मांगें इसी कड़ी का हिस्सा हैं। हिंदुस्तान का संविधान नागरिकों को पुरअमन तरीक़े से अपनी राय के इज़हार और सभा का हक देता है, हालांकि इस हक के साथ यह ज़िम्मेदारी भी जुड़ी है कि एहतेजाज कानून, कानून–व्यवस्था और दूसरों के अधिकारों को मुतास्सिर न करे।

हालिया बरसों में हिंदुस्तान में नौजवानों की एक नई अवामी तहरीक कॉकरोच जनता पार्टी के नाम से सामने आई, जिसने अपने अनोखे अंदाज़ और प्रतीकात्मक एहतेजाज की वजह से आवाम और मीडिया की तवज्जो हासिल की। इस तहरीक का नाम बज़ाहिर ग़ैर–मामूली मालूम होता है, मगर इसके संस्थापकों का कहना है कि उन्होंने 'कॉकरोच' लफ्ज़ को किसी के तंज़ की बुनियाद पर इसलिए अलामत बनाया कि यह सख़्त से सख़्त हालात में भी जिंदा रहने की क्षमता रखता है। उनके मुताबिक़ आज का नौजवान भी बेरोज़गारी, परीक्षा की बेजाब्तगियों, महंगाई और विभिन्न आर्थिक मुश्किलात के बावजूद जद्दोजहद कर रहा है, इसीलिए इस अलामत को इख़्तियार किया गया।

सी.जे.पी. के एहतेजाजात की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह पारंपरिक नारों और जलसों के बजाय अलामाती और तख़्लीकी अंदाज़ अपनाते हैं ताकि आवाम और हुकूमत दोनों की तवज्जो अपनी तरफ आकर्षित कर सकें। उनके समर्थकों का ख़्याल है कि इस मुनफ़रिद अंदाज़ ने नौजवान नस्ल को सियासी और सामाजिक बहसों में दिलचस्पी लेने की प्रेरणा दी, जबकि आलोचकों के नज़दीक सिर्फ अलामाती एहतजाज उस वक़्त तक

प्रभावी साबित नहीं हो सकता जब तक इसके साथ व्यावहारिक और क़ाबिल–ए–अमल सुझाव भी पेश न की जाएं।

दुनिया की तारीख़ यह सबक देती है कि एहतेजाज की कामयाबी सिर्फ आवाम की तादाद से नहीं बल्कि उसके मक़सद, अख़्लाक, नज़्म व ज़ब्त और क़यादत से वाबस्ता होती है। वह एहतेजाज ज़्यादा दीर्घकालिक और मोअस्सिर साबित होते हैं जो जन–चेतना को बेदार करें, संवाद का रास्ता खुला रखें, तशद्दुद से परहेज करें और कानून के दायरे में रहकर इस्लाह की कोशिश करें। इसके विपरीत जो एहतेजाज नफ़रत, तोड़–फोड़, सरकारी या निजी संपत्ति की तबाही, या आम नागरिकों की मुश्किलात का सबब बन जाएं, वह अपने मकसद को कमज़ोर कर देते हैं और अवामी हिमायत भी खो बैठते हैं।

दुनिया के कामयाब एहतेजाजात का एक साझा विशेषता यह है कि उनमें अवामी शऊर के साथ–साथ अख़्लाकी कुव्वत भी मौजूद थी। जब एहतेजाज सिर्फ़ गुस्से के इज़हार तक महदूद न रहे बल्कि उसके साथ स्पष्ट मुतालबात, ज़िम्मेदार क़यादत और जन–कल्याण वाबस्ता हो तो उसके कामयाब होने के संभावनाएं बढ़ जाते हैं। यही उसूल आज के हिंदुस्तान पर भी सादिक़ आता है। नौजवानों को दरपेश बेरोज़गारी, महंगाई, इम्तिहानी निज़ाम की खामियां, सरकारी भर्तियों में देरी और दीगर अवामी मसाइल ऐसे मौज़ूआत हैं जिन पर संजीदा मुकालमे और तामीरी कोशिशों की ज़रूरत है। अगर किसी तहरीक का मक़सद इन मसाइल की निशानदेही करना और हुकूमत व अवाम के दरमियान राब्ते का जरिया बनना हो तो वह लोकतांत्रिक समाज में एक सकारात्मक किरदार अदा कर सकती है।

हर एहतेजाजी तहरीक के साथ आलोचना भी वाबस्ता होती है। बाज़ आलोचको का ख़्याल है कि अलामाती और तंज़िया एहतेजाज वक्ती तवज्जो तो हासिल कर लेते हैं लेकिन अगर उनके साथ क़ाबिल–ए–अमल योजनाएं, मज़बूत संगठन और देरपा रणनीति न हो तो उनके असरात महदूद रह जाते हैं। दूसरी तरफ हामियों का कहना है कि जब पारंपरिक माध्यम अवामी मसाइल को मोअस्सिर अंदाज़ में उजागर न कर सकें तो नए और मुनफ़रिद अंदाज़ इख़्तियार करना वक्त की ज़रूरत बन जाता है। हकीकत यह है कि किसी भी तहरीक की कामयाबी का फ़ैसला उसकी नीयत, अवामी ख़िदमत, तंजीमी सलाहियत और अमली परिणामों की बुनियाद पर होता है, न कि सिर्फ उसके नाम या अंदाज़–ए–एहतजाज पर।

इस्लाम की तालीमात ज़ुल्म के ख़िलाफ आवाज़ बुलंद करने की हौसला अफ़ज़ाई करती हैं लेकिन इसके साथ न्याय, हिकमत, सब्र और अख़्लाक़ की पाबंदी को लाज़मी करार देती हैं। कुरान मजीद अद्ल व इंसाफ को क़ायम करने का हुक्म देता है और ज़ुल्म से रोकता है। रसूलुल्लाह (स0अ0व.0) ने फरमायाः "तुम में से जो शख़्स किसी बुराई को देखे तो उसे अपने हाथ से रोके, अगर इसकी ताक़त न हो तो ज़बान से और अगर इसकी भी ताकत न हो तो दिल में बुरा जाने और यह ईमान का कमज़ोर तरीन दर्जा है।" (मुस्लिम)

इस हदीस से मालूम होता है कि बुराई के खिलाफ आवाज़ बुलंद करना मतलूब है लेकिन यह भी याद रखना चाहिए कि जो भी तरीका इख़्तियार किया जाए वह हालात, विवेक और शरई सीमाओं के मुताबिक हो।

इस्लामी दृष्टिकोण से ऐसा एहतजाज दुरुस्त नहीं जिसमें तोड़–फोड़, आगज़नी, अवामी या निजी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना, बेगुनाह लोगों को तकलीफ देना, नफरत अंगेज़ी, झूठ या तशद्दुद शामिल हो। इसी तरह सड़कें बिलावजह बंद करके मरीज़ों, छात्रों, मज़दूरों और आम शहरियों को मुश्किलात में मुब्तिला करना भी क़ाबिल–ए–तारीफ़ अमल नहीं। इस्लाम इस्लाह का रास्ता इख़्तियार करने, ख़ैरख़्वाही, नसीहत, परामर्श और हिकमत के साथ मसाइल के हल की तालीम देता है। अगर एहतजाज नागुज़ीर हो तो वह पुरअमन, सभ्य, कानूनी और जिम्मेदाराना होना चाहिए ताकि उससे समाज में फसाद के बजाय इस्लाह पैदा हो।

हिंदुस्तान जैसे विविधतापूर्ण और जम्हूरी मुल्क में वैचारिक मतभेद एक स्वाभाविक बात है। विभिन्न सियासी जमातें, सामाजिक तंजीमें और अवामी तहरीकें अपने–अपने नज़रियात के मुताबिक काम करती हैं। किसी भी तहरीक, ख़्वाह वह 'कॉकरोच जनता पार्टी' हो या कोई और, उसकी कामयाबी का दारो–मदार इस बात पर है कि वह अवामी मसाइल के हकीकी हल पेश करे, आईन और कानून का सम्मान करे, इख़्तिलाफ को दुश्मनी में तबदील न होने दे और समाज में अमन व इस्तेहकाम को नुकसान पहुंचाए बगैर इस्लाह की कोशिश करे।

इल्हाद का तूफ़ान
असबाब व इलाज

मोहम्मद नजमुद्दीन नदवी

इल्हादी फ़िक्र–ओ–नज़र और उसके रुझान व इस्तदलाल का तजज़िया इस हकीकत को नुमायाँ करता है कि अस्रे–नौ के अलमबरदारान–ए–इल्हाद व देहरियत जिन अस्बाब व इलल की वजह से मज़हब व खुदा का इंकार करते हैं, उनमें एक मज़हब व इलाह का तसव्वुर भी है; जैसा कि गुज़श्ता तहरीर में ज़िक्र किया गया और तसव्वुर–ए–इलाह पर अच्छी रोशनी डाली गई थी।

तसव्वुर–ए–इलाह के निज़ाम–ए–फ़िक्र–ओ–नज़र में इस मसले की वज़ाहत में मुस्लिम उलेमा और अज़ीम सूफ़ी फ़लसफ़ियों ने दिलचस्पी का मुज़ाहिरा किया है। दुनिया के मज़ाहिब और उनके निज़ाम–हाए–फ़िक्र व फ़लसफ़े के बरअक्स, इस्लाम का निज़ाम व तसव्वुर–ए–इलाह इंतिहाई शफ़्फ़ाफ़ और एतक़ादी, अख़्लाकी व फ़िक्री लिहाज़ से अपनी अलग और ग़ैर–मुबहम फ़िक्र और फ़िक्री व अमली अहमियत का हामिल है। अगरचे कुछ अहल–ए–फ़िक्र व नज़र मुस्लिम सूफ़ी फ़लसफ़े के नज़री व फ़लसफ़ियाना मिनहाज व रुझान ने इसे एक फ़िक्री व नज़रियाती निज़ाम की सूरत अता कर दी है।

इस सिलसिले में इमाम इब्नुल अरबी, इमाम ग़ज़ाली और मुजद्दिद अल्फ़–ए–सानी के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से हर एक अपने तबहुर–ए–इल्मी और अमली बुलंदी के बावजूद मज़लूम दिखाई देते हैं; क्योंकि उनको और उनकी फ़लसफ़ियाना तौज़ीहात को समझा नहीं गया और उनकी फ़िक्री व नज़रियाती तफ़हीम व तशरीह में अफ़रात व तफ़रीत बल्कि दूसरे अल्फ़ाज़ में कहा जा सकता है कि बहुत ज़्यादा तअस्सुब से काम लिया गया।

इसमें कोई शुब्हा नहीं कि इमाम ग़ज़ाली ने 'इह्याउल उलूम' और 'तहाफ़ुतुल फ़लासिफ़ा' वग़ैरह अहम व मारका–आरा किताबें लिखकर इंसानी ज़ेहन व दिमाग़ में नए उभरकर आने वाले फ़लसफ़ियाना सवालात और उनके मिनाहिज व रुझानत को सामने लाने की कामयाब जद्दोजहद की। इमाम ग़ज़ाली ने 'तहाफ़ुतुल फ़लासिफ़ा' में मरिग़ब के यूनानी फ़िक्र व फ़लसफ़े के तार बिखेर दिए और यूनानी फ़र्सूदा व मजऊमा नज़रिये व फ़लसफ़े की पामाली का साफ़ ऐलान कर दिया और एक नए मिनहाज–ए–फ़िक्र व तहलील की असास क़ायम की।

'इह्याउल उलूम' में इस्लाम के निज़ाम–ए–फ़िक्र व अमल के जुमला पहलुओं को वसीअ दायरे में देखकर जाब्ता–बंदी फ़रमाई। इंतिहाई हैरत की बात यह है कि जिसने फ़लसफ़े की बेबसी देखी हो और फ़लासिफ़ा की इलाहियाती फ़िक्र–ओ–नज़र और आरा की तरदीद यह कहकर की हो:

'और बेशक वे तहकीक और यक़ीन के बजाय सिर्फ़ ज़न व तख़्मीन पर फ़ैसला करते हैं।' (तहाफ़ुतुल फ़लासिफ़ा)

उन्होंने इसमें बता दिया कि फ़लासिफ़ा के इलाहियाती उलूम और अफ़कार व आरा सिर्फ़ और सिर्फ़ ज़न व तख़्मीन हैं, जिनकी असास तहक़ीक़ व यक़ीन पर नहीं है। लेकिन इसका यह मायने नहीं कि इमाम ग़ज़ाली के यहाँ अक्ल व ज़ेहन की अहमियत का इंकार है, बल्कि यह बताना मक्सूद है कि माबादुत–तबीयाती हकीकतों का इदराक (बोध) अक्ल व ज़ेहन के लामहदूद होने के बावजूद मुमकिन नहीं बल्कि मुहाल है।

अज़ीम मुफ़क्किर, आलिम व सूफ़ी इमाम इब्नुल अरबी उनके बाद अन्दलुस की ज़मीन से उठे। उन्होंने इल्मुल कलाम के हल में तसव्वुफ़ की राह से क़दम रखा और नज़रियाती व मअनवी पसमंज़र में एक ऐसा फ़िक्री धारा दिया, हक़ीक़त यह है कि फ़हम व इदराक के हवाले से उनका दिया हुआ फ़िक्री धारा और नज़रियाती फ़लसफ़े ने बड़ी मुश्किल खड़ी कर दी। इमाम इब्नुल अरबी की 'फ़तूहात–ए–मक्किया' और 'फ़ुसूसुल हिकम' नामी किताबों ने माबादुत–तबीयाती मसाइल के फ़हम व इदराक को और मुश्किल व पेचीदा बना डाला और इसका नतीजा यह निकला कि एक मुश्किल तरीन नज़रिया व रुझान सामने आया, जिसे 'वहदतुल वजूद' से ताबीर किया जाता है।

इस फ़िक्री मिनहाज और फ़लसफ़ियाना नज़रिये ने मुस्लिम तारीख व मुआशरे में मुस्बत व मन्फ़ी अज़रात डाले। इमाम इब्नुल अरबी के वहदतुल वजूदी नज़रिये व रुझान में वजूद–ए–बारी तआला, सिफ़ात व अस्मा–ए–इलाही, कुल्लिया–ए–अवालिम, हकीकत–ए–मुहम्मदी, नबुव्वत व रिसालत, विलायत–ए–आम्मा व ख़ास्सा, अयान–ए–सा बिता व जौहर व अरज़ और आलम–ए–इंसानी की तफ़हीम व

शरह के ताने–बाने हैं, जो ऐसा नहीं कि आसानी से एक लम्हे में बिखर जाएँ। इब्नुल अरबी के जामेअ मगर मुश्किल व पेचीदा नज़रियाती व मअनवी मसाइल और फ़िक्री धारों की फ़हम के लिए इल्मी तबहुर, फ़िक्र–ओ–फ़लसफ़ा और मअरिफ़त व इरफ़ान के इदराक की न सिर्फ ज़रूरत है, बल्कि इसके लिए फ़रासत व बसीरत–ए–क़ल्बी, रूहानी हकाइक के इदराकात और हिदायत भी नागुज़ीर ज़रूरत है।

तसव्वुर–ए–इमाम इब्नुल अरबी की फ़हम व इदराक किसी कदर मुश्किल ज़रूर है। अगर ग़ौर किया जाए तो यही तसव्वुर व फ़लसफ़ा सूफी मंसूर हल्लाज के यहाँ भी पाया जाता है। उनके फ़िक्री निज़ाम में वहदतुल वजूद का फ़लसफ़ा ऐसा है कि अहल–ए–इल्म उनके मक़ाम और इस फ़लसफ़े से आगाह हैं। इस नज़रिये को बाज़ लोगों की शरह से तक़वियत पहुँची, जिनमें शेख अब्दुल रज्ज़ाक और शेख अब्दुल करीम जीली के नाम खुसूसियत से लिए जा सकते हैं।

इब्नुल अरबी का तसव्वुर–ए–तौहीद में उनका फ़लसफ़ा–ए–वहदतुल वजूद ऐसा नज़रियाती एहसास और फ़िक्री शऊर है कि वे रूह–ए–इंसानी को रूह–ए–अक़्ली से ताबीर करते हैं। जिस्म और रूह को एक दूसरे के बिल्कुल बरअक्स बताकर यह कहा है कि जिस्म महज़ एक आरज़ी सकूनत–गाह है, जिसमें कुछ देर के लिए रूह रहती है; फिर जब वह अपने रूहानी तजुर्बे के नतीजे में आगे बढ़ती है, तो जुमला मख़्लूकात से बेख़बर हो जाती है। इस मंज़िल पर आकर उसे ज़ात–ए–बारी के सिवा किसी भी शै का कोई शऊर व एहसास नहीं होता, बल्कि हर चीज़ में उसे बारी तआला ही नज़र आता है। इस नज़रिये को इस शेर में देखा जा सकता है कि:

जब मेहर नुमायाँ हुआ सब छुप गए तारे
तू मुझ को भरी बज़्म में तन्हा नज़र आया

इस्लामी फ़िक्र के मंज़रनामे में यह एक इख़्तिलाफ़ी मौज़ू बन गया कि इस फ़िक्री ज़ाविया–ए–निगाह और नज़रियाती शऊर पर उलेमा–ए–उम्मत ने शदीद तन्कीद की है; क्योंकि अगर इसकी गहराई में उतरकर देखा जाए तो यह वह नज़रियाती एहसास और फ़िक्री ज़ाविया है जिसकी सरहदें कुफ़्र तक से जा मिलती हैं।

इमाम इब्न–ए–तैमिया और मुजद्दिद अल्फ़–ए–सानी इमाम अहमद सरहिंदी इस सिलसिले में नुमायाँ हुए हैं। इमाम अहमद सरहिंदी ने तसव्वुर–ए–तौहीद की जो शरह फ़रमाई, उससे मज़हबी शऊर व एहसास का एक और फ़लसफ़ा वजूद में आया, जो 'नज़रिया–ए–वहदतुल शुहूद' से मुतआरिफ़ हुआ। उन्होंने बताया कि सूफ़ी व सालिक को मारिफ़त व इरफ़ान के सफ़र में एक ऐसी कैफ़ियत हासिल हो सकती है, जिसमें हर चीज़ में अल्लाह तआला के सिवा कोई दिखाई नहीं देता। राह–ए–मअरिफ़त के इस मुशाहिदे को 'शुहूद' से ताबीर करते हैं। इस को इमाम इब्नुल अरबी की तरह वजूद की ताबीर व नज़रिये से गुरेज़ करते हैं और इस फ़िक्री नज़रिये और नज़रियाती शऊर की तरदीद भी करते हैं और वहदतुल शुहूद की ताबीर व नज़रिया–साज़ी की। 'मक्तूबात' में उन्होंने इस पर कई मकामात पर कलाम फ़रमाया है।

इस तरह दो मकतब–ए–फ़िक्र वजूद में आ गए और फ़िक्री व अमली हैसियत से अवाम में मक़बूलियत हुई और इन पेचीदा फ़लसफ़ों और नज़रियाती मकतबों को शुराह भी मयस्सर आए, लेकिन फिर भी एक मज़हबी फ़लसफ़े की तशरीह में एक तरह की ख़लीज हायल सी हुई।

इमाम शाह वलीउल्लाह देहलवी ने दोनों मकतबों में एक वसीअ फ़िक्री तनाज़ुर में देखने, परखने और तत्बीक़ की कोशिश फ़रमाई है। जब दोनों के नज़रिये व फ़लसफ़े एक दूसरे से बिल्कुल मुतग़ायर हों, तो दोनों की फ़िक्र में तत्बीक कैसे मुमकिन हो सकती है? मगर इमाम शाह वलीउल्लाह देहलवी का हौसला ही है कि उन्होंने इस मुश्किल मामले में हल की राह तलाश की और फ़िक्री निज़ाम का एक मजबूत ख़ाका अपनी किताबों में पेश भी किया, और 'अल–खैरुल कसीर' में उन्होंने इन तमाम मसाइल पर गुफ़्तगू फ़रमाई है।

मौज़ू के पसमंज़र में नाइंसाफ़ी होती अगर इस मौके पर मज़हबी फ़लसफ़े और इशराक़ी व कश्फ़ी मुस्लिम सूफ़ी फ़लासिफ़ा के नज़रियाती मबाहिस और तसव्वुर–ए–खुदा की तफ़हीम व तशरीह को न देखा जाता। लेकिन इन तमाम तौज़ीहात में भी हमें एक नज़र डालने से यह बात वाज़ेह तौर पर सामने आएगी कि वजूद–ए–बारी, सिफ़ात–ए–इलाही, माहियत, तख़्लीक वग़ैरह दीगर मसाइल पर कलाम करने में मनाबेअ और मसादिर के तौर पर हर एक मुस्लिम मुफ़क्किर व मुतकल्लिम, सूफ़ी व मुज्तहिद के फ़िक्री व नज़री पसमंज़र में कुरान–ए–हकीम, अहादीस–ए–नबविया और आसार–ए–सहाबा असास की हैसियत से नज़र आते हैं।

सहाबा किराम की मुहब्बत व जांनिसारी के कुछ नमूने

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

हुज़ूर–ए–अकरम (स0अ0व0) की तरबियत–याफ़्ता यह जमाअत, जिसने अपनी ज़िंदगियों को दीन–ए–इस्लाम की नश्र–ओ–इशाअत के लिए क़ुर्बान कर दिया। जिनका एक–एक पल, एक–एक लम्हा हुब्ब–ए–नबवी (स0अ0व0) से सरशार रहा।

सहाबा–ए–किराम हुज़ूर (स0अ0व0) की तरबियत–याफ़्ता वह जमाअत है जिसने दुनिया ही में जन्नत की बशारत, ख़ुदा की ख़ुशनूदी और रज़ामंदी हासिल कर ली थी। इन मुबारक हज़रात का तज़किरा क़ुरआन करीम में जा–ब–जा मिलता है। कहीं उनके बारे में आता है: "अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे अल्लाह से राज़ी हुए।"

कहीं उनको (وَكُلًّا وَعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى) की ख़ुशख़बरी सुनाई गई। यह वह जमाअत है जिसको नबी करीम (स0अ0व0) की सोहबत हासिल हुई और उस सोहबत से उसने भरपूर फ़ायदा भी उठाया। जिसने अपना तन, मन, धन सब अल्लाह की रज़ा के लिए, उसके रसूल की मुहब्बत की ख़ातिर और उसके दीन की मदद के लिए लुटा दिया था।

यह वह जमाअत है जिसकी तवज्जोह का मरकज़ और मुहब्बत का महवर सिर्फ़ ज़ात–ए–नबी थी। उनकी ज़िंदगियाँ रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की तालीमात का अक्स–ए–जमील थीं। यही वह सिफ़ात थीं जिन्होंने उनको आसमान का चमकता हुआ वह सितारा बना दिया था, जिससे उनके बाद के लोग रौशनी तो हासिल करते हैं मगर उस तक रसाई पाना उनके लिए मुमकिन नहीं।

सोहबत–ए–नबी (स0अ0व0) ने उनको ईमान की उस लज़्ज़त से आशना कर दिया था जो लज़्ज़त हज़ारों बरस की रियाज़त के बाद भी हासिल नहीं हो पाती। वह लज़्ज़त उनको चंद मिनट की सोहबत और सोहबत के नतीजे में मुहब्बत से हासिल हो गई थी। यही वह लज़्ज़त–आशनाई थी जिसने साहिरान–ए–मूसा को ऐसा ईमान नसीब कर दिया था कि उन्होंने फ़िरऔन की धमकी के जवाब में कहा: "तुमको जो फ़ैसला करना हो करो।"

तुम्हारा फ़ैसला तो इस दुनिया ही की ज़िंदगी तक है। हम अपने रब पर ईमान ला चुके ताकि वह हमारी ख़ताओं को और तुमने जिस जादू पर हमें मजबूर किया, उसको माफ़ कर दे। और अल्लाह ही बेहतर है और बाक़ी रहने वाला है।

सहाबा–ए–किराम जिस चीज़ में सबसे ज़्यादा नुमायाँ और मुमताज़ थे, वह उनकी फ़िदाइयत और रसूलुल्लाह (स0अ0व0) से उनकी मुहब्बत व अक़ीदत थी। यही वजह थी कि उनकी जाँनिसारी के वह हैरान–कुन वाक़्यात, जो अगर तवातुर के साथ सीरत और तारीख़ की किताबों में महफ़ूज़ न होते, तो अक़्ल–ए–इंसानी उनको तस्लीम करने से इंकार कर देती। उनकी जाँनिसारी को उनके सख़्त–तरीन दुश्मनों और ख़ून के प्यासों ने भी तस्लीम किया है।

सुलह हुदैबिया के मौक़े पर उरवा बिन मसऊद सक़फ़ी, जिनको क़ुरैश ने अपना क़ासिद बनाकर आप (स0अ0व0) के पास भेजा था, उन्होंने रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के साथ सहाबा की हैरान–अंगेज़ अक़ीदत का जो मंज़र देखा, उसने उनके दिल पर अजब असर किया। क़ुरैश से जाकर कहा: "मैंने क़ैसर, किसरा और नज्जाशी के दरबार देखे हैं, लेकिन यह अक़ीदत और वारफ़्तगी कहीं नहीं देखी। मुहम्मद (स0अ0व0) बात करते हैं तो सन्नाटा छा जाता है। कोई शख़्स उनकी तरफ़ नज़र भरकर देख नहीं सकता। वह वुज़ू करते हैं तो जो पानी गिरता है, उस पर लोग टूट पड़ते हैं। लुआब–ए–दहन अक़ीदत–केश हाथों–हाथ लेते हैं और चेहरे और जिस्म पर मल लेते हैं।"

सहाबा–ए–किराम की मुहब्बत व जाँनिसारी के चंद नमूने मुलाहज़ा करें: हज़रत ख़ुबैब (रज़ि0) जब काफ़िरों की क़ैद में थे और सूली का फंदा उनके लिए तैयार किया जा चुका था, उस वक़्त एक सख़्त–दिल ने उनके जिगर को छेदा और पूछा: कहो, क्या तुम यह पसंद करोगे कि मुहम्मद (स0अ0व0) फँस जाएँ और मैं छूट जाऊँ?

आशिक़–ए–रसूल (स0अ0व0) ने निहायत जोश से जवाब दिया: "ख़ुदा जानता है, मैं तो यह भी बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा कि मेरी जान बच जाए और नबी (स0अ0व0)

के पाँव में मामूली–सा काँटा भी चुभे।"

हज़रत ज़ैद बिन दसिना (रज़ि0) को क़त्ल के लिए हरम से बाहर लाया गया। उस वक़्त क़ुरैश के बहुत–से लोग वहाँ जमा थे। अबू सुफ़ियान भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने हज़रत ज़ैद (रज़ि0) से कहाः

"ज़ैद! क़सम देकर मैं तुमसे पूछता हूँ, क्या तुम यह पसंद करोगे कि तुम आराम से अपने घर में घरवालों के साथ हो और तुम्हारी जगह मुहम्मद (स0अ0व0) हों?" उन्होंने तड़पकर जवाब दियाः "मुझे तो यह भी गवारा नहीं कि मैं अपने घर में आराम से हूँ और मुहम्मद (स0अ0व0) को एक काँटा भी चुभे।"

अबू सुफ़ियान (स0अ0व0) ने इस पर कहाः "मैंने किसी को किसी से इतनी मुहब्बत करते नहीं देखा जितनी मुहब्बत मुहम्मद (स0अ0व0) के साथी मुहम्मद (स0अ0व0) से करते हैं।"

ग़ज़वा–ए–उहद में हज़रत अबू दुजाना (रज़ि0) ने अपनी पीठ को आप (स0अ0व0) पर झुकाकर ढाल बना दिया था। तीर उनकी पीठ पर लग रहे थे और वह बे–हिस–ओ–हरकत खड़े थे।

इसी मौक़े पर ज़ोर–ओ–शोर का हमला काफ़िरों की जानिब से हुआ। आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "कौन उनको पीछे ढकेलता है और जन्नत लेता है?" सात अंसारी खड़े थे। एक–एक आदमी बारी–बारी बढ़ता रहा और आप (स0अ0व0) यही फ़रमाते रहे। सातों उसी जगह काम आ गए।

हज़रत तल्हा (रज़ि0) ने अपने हाथ से सिपर का काम लिया और हज़ूर (स0अ0व0) की जानिब आने वाले तीर अपने हाथ पर रोके। यह हाथ हमेशा के लिए शल हो गया था। हज़रत अबू तल्हा (रज़ि0), जो मशहूर तीरअंदाज़ थे, उन्होंने सिपर हज़ूर (स0अ0व0) के चेहरे पर ओट कर लिया था कि आप (स0अ0व0) पर कोई वार न आने पाए। आप (स0अ0व0) कभी गर्दन उठाकर दुश्मनों की फ़ौज की तरफ़ देखते तो यह अर्ज़ करतेः "आप गर्दन न उठाएँ, ऐसा न हो कि कोई तीर आकर लग जाए। यह मेरा सीना सामने है।"

इसी मौक़े पर एक दफ़ा फिर काफ़िरों की जानिब से हुजूम हुआ तो हज़ूर (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "कौन मुझ पर जान देता है?" ज़ियाद बिन सकन (रज़ि0) पाँच अंसारी लेकर इस ख़िदमत को अदा करने के लिए बढ़े और एक–एक ने जाँबाज़ी से लड़कर अपनी जानें फ़िदा कर दीं। ज़ियाद (रज़ि0) को यह शरफ़ हासिल हुआ कि हज़ूर (स0अ0व0) ने हुक्म दिया कि उनका लाशा क़रीब लाओ। लोग उठाकर लाए। कुछ–कुछ जान बाक़ी थी। क़दमों पर सर रख दिया और उसी हालत में जान दी।

एक ख़ातून, जिनके बाप, भाई और शौहर सब उसी लड़ाई में शहीद हो गए थे, लेकिन उन्होंने उनमें से किसी के बारे में कुछ न पूछा। अलबत्ता हज़ूर (स0अ0व0) के बारे में हर एक से पूछती रहीं कि आप (स0अ0व0) कैसे हैं? सबकी तरफ़ से यही जवाब मिलाः "हज़ूर–ए–अकरम (स0अ0व0) ख़ैरियत से हैं।" लेकिन उन ख़ातून ने कहाः "जब तक मैं अपनी आँखों से आप (स0अ0व0) को न देख लूँगी, मुझे चैन नहीं आएगा।" उनकी बे–क़रारी देखकर उनको आप (स0अ0व0) के पास लाया गया। जब उन्होंने अपनी आँखों से आप (स0अ0व0) को देखा तो वह तारीख़ी जुमला कहा, जिसको तारीख़ आज तक न भुला सकी है और न कभी भुला सकेगी। उन्होंने कहाः "आप (स0अ0व0) के बाद हर मुसीबत हल्की है, ऐ अल्लाह के रसूल (स0अ0व0)!"

ख़लीफ़ा–ए–सानी हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि0) ने हज़ूर (स0अ0व0) से कहाः "ऐ अल्लाह के रसूल (स0अ0व0)! आप (स0अ0व0) हमको हर चीज़ से ज़्यादा महबूब हैं, सिवाय अपनी ज़ात के।" तो नबी करीम (स0अ0व0) ने कहाः "नहीं! उस ज़ात की क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, उस वक़्त तक तुम्हारा ईमान मोतबर नहीं हो सकता, जब तक कि मैं तुमको तुम्हारी जान से ज़्यादा महबूब न हो जाऊँ।"

हज़रत उमर (रज़ि0) ने कहाः "बस! ख़ुदा की क़सम, मुझको आप (स0अ0व0) अपनी ज़ात से भी ज़्यादा महबूब हैं।" नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "अब ठीक है, ऐ उमर!"

हज़रत अली (रज़ि0) से पूछा गया कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) से आपकी मुहब्बत कैसी थी? हज़रत अली (रज़ि0) ने कहाः "ख़ुदा की क़सम! आप (स0अ0व0) हमको हमारे माल–ओ–दौलत, माँ–बाप और बीवी–बच्चों से ज़्यादा महबूब थे।"

यह चंद वाक़्यात हैं, वरना इस जमाअत का तो हर फ़र्द हुब्ब–ए–नबी (स0अ0व0) में उस बुलंदी पर खड़ा नज़र आता है जहाँ तक सिर्फ़ सहाबा–ए–किराम ही की खुसूसियत है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद का इरशाद हैः "आप (स0अ0व0) के सहाबा इस उम्मत में सबसे बेहतरीन लोग हैं, साफ़ दिल, इल्म में गहराई रखने वाले और तकल्लुफ़ से दूर रहने वाले। यह वह लोग हैं जिनको अल्लाह तआला ने अपने नबी (स0अ0व0) की सोहबत के लिए और दीन को बाद वालों तक मुन्तक़िल करने के लिए चुन लिया था। उनके अख़्लाक़ और उनके तरीक़े को अपनाओ। यह मुहम्मद (स0अ0व0) के साथी हैं और सही रास्ते पर हैं।"

क़याम नदवतुल उलमा और कुछ अहम शख़्सियतें

अबुल हसन अली हसनी नदवी

तहरीक–ए–नदवतुल उलमा का पस–मंज़र और तारीख़:

तारीख़ के सियाह सफ़हात (काले पन्नों) में एक ऐसा सफ़हा है जिसको मुसलमान–ए–हिंद कभी फ़रामोश (भूल) नहीं कर सकते। 1857 ई. यह वो साल है जिसमें अहल–ए–इस्लाम को बातिल ताक़तों के हाथों सख़्त शिकस्त का सामना करना पड़ा। पूरे मुल्क में एक मायूसी की कैफ़ियत फैलती जा रही थी। ईमान व यक़ीन की कमी, दीनी तालीम की तरफ़ रुझानत की क़िल्लत, उलेमा–ए–इस्लाम से बुअ्द व अजनबियत (दूरी) का एहसास, मग़रिबी अफ़कार (पश्चिमी विचारों) की बालादस्ती बढ़ती और इस्लामी इक़दार (मूल्यों) की अहमियत अपना वजूद खोती हुई नज़र आ रही थी।

एक तरफ़ तो मग़रिबियत अपने क़दम बढ़ाती और जमाती जा रही थी और दूसरी तरफ़ उलेमा–ए–दीन अपने बाहमी निज़ाअ (आपसी मतभेदों) में इस क़दर मुनहमिक (व्यस्त) थे कि उनको इस बढ़ते हुए तूफ़ान की तरफ़ तवज्जो करने की भी फ़ुर्सत नहीं थी। मग़रिबियत का जाल फैलता जा रहा था, जदीद तालीम (आधुनिक शिक्षा) के असर व रसूख़ से लोगों के ज़ेहनों में इस्लाम और उसकी वुसअत (विस्तार), उसके मुआशरती निज़ाम (सामाजिक व्यवस्था), उसकी हक़्क़ानियत और तमाम मज़ाहिब पर उसकी अफ़ज़लियत व बरतरी का एहसास मांद (धुंधला) पड़ता जा रहा था, ऐसे हालात में दो तहरीकें (आंदोलन) वजूद में आती हैं जिनके अफ़कार व नज़रियात बावजूद यकसां हदफ़ व मक़सूद (एक ही लक्ष्य) के सरासर मुतसादिम व मुतज़ाद (विरोधाभासी) थे, एक मग़रिबी असरात से दूर, क़तई तौर पर तालीम–ए–जदीद के ख़िलाफ़ तेग़–ए–बुर्रां (तेज़ तलवार), क़दीम तर्ज़–ए–तालीम व तर्ज़–ए–फ़िक्र की मोअय्यिद (समर्थक) और अलमबरदार थी तो दूसरी मग़रिबी तहज़ीब व तमद्दुन को मुसलमानों की फ़लाह व बहबूद (कल्याण) का ज़ामिन समझती थी, फ़िक्र के इस तनव्वो (विविधता) के नतीजे में इख़्तिलाफ़ात (मतभेद) मज़ीद बढ़ते चले गए। ऐसे हालात में ज़रूरत थी कि कोई ऐसी तहरीक उठे जो इस बाहमी इख़्तिलाफ़ात में सालिसी (मध्यस्थता) का किरदार अदा करे जो मुसलमानों के दरमियान भड़कती आग को बुझाकर जदीद तालीम याफ़्ता तबक़े के दिल व दिमाग़ में दीन व अहल–ए–दीन की अज़्मत व वक़ार और उलमा के हक़ में उनके एतमाद को बहाल कर सके और दीनी तालीम याफ़्ता जमात को वुसअत–ए–फ़िक्र व कुशादा क़ल्बी (उदारता) के साथ अस्री (आधुनिक) तालीम याफ़्ता लोगों से रब्त व तअल्लुक़ मज़बूत करने पर आमादा कर सके और एक ऐसी जमाअत तश्कील दे जो अस्री तक़ाज़ों को सामने रखकर जदीद तालीम याफ़्ता तबक़ा के अफ़कार व नज़रियात, उनकी नफ़सियात (मनोविज्ञान) और उनके मिज़ाज व मज़ाक़ के मुताबिक़ दीन की तफ़हीम व तशरीह (व्याख्या) का फ़रीज़ा अंजाम दे सके।

ऐसे संगीन हालात में चंद अहल–ए–फ़िक्र व नज़र मर्दान–ए–बा–सफ़ा इस ज़रूरत को महसूस करते हुए कानपुर के एक छोटे से मदरसे में एक तहरीक का आग़ाज़ करते हैं जिसको "तहरीक–ए–नदवतुल उलमा" के नाम से मौसूम (नामित) किया जाता है।

इस तहरीक के मुतअद्दिद (कई) मक़ासिद में से दो बुनियादी मक़ासिद ऐसे थे जिसकी ज़रूरत शिद्दत से महसूस की जा रही थी, उनमें से एक का तअल्लुक़ इल्म यानी 'तजदीद–ए–निसाब' (पाठ्यक्रम का आधुनिकरण) और एक का तअल्लुक़ अहल–ए–इल्म यानी 'रफ़्अ–ए–निज़ाअ–ए–बाहमी' (आपसी मतभेद ख़त्म करने) से था, आख़िरुज़्ज़िक्र (बाद वाले) की पुरज़ोर ताईद हुई और इसके अमली नताइज (व्यावहारिक परिणाम) जल्द सामने आए, मुल्क भर में भाईचारे की एक फ़िज़ा क़ायम होने लगी, बुग्ज़ व अदावत के तारीख़ जंगलों में फिर से आफ़ताब–ए–उख़ुव्वत–ए–इस्लामी (इस्लामी भाईचारे का सूरज) अपनी शुआएं बिखेरने लगा,

तंग–नज़री कुशादा–दिली में तबदील हो गई और उलेमा–ए–मिल्लत ने पूरे इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ के साथ एक प्लेटफ़ॉर्म पर जमा होकर मुसलमान–ए–हिंद की फ़लाह व बहबूद के तईं तबादला–ए–ख़्याल और अमली कार्रवाई की सई व कोशिश शुरू कर दी। लेकिन अव्वलुज़्ज़िक्र (पहले वाले) की तकमील में रुकावटों का सामना करना पड़ा, अहल–ए–मदारिस तहफ़्फ़ुज़ात और शुकूक व शुब्हात का शिकार हुए और इस्लाह–ए–निसाब (पाठ्यक्रम सुधार) को एक क़िस्म का इंहिराफ़ (भटकाव) तक समझने लगे जिसके नतीजे में इस अहम मक़सद की तकमील में बड़ी दुश्वारी पेश आई और मुसलसल पेश आती रही, बिल–आख़िर नदवतुल उलेमा को खुद अपना दारुल उलूम क़ायम करना पड़ा जिसमें हालात को मद्देनज़र रखते हुए बक़द्र–ए–हाजत निसाब–ए–तालीम व तरीक़ा–ए–तालीम में वक़्तन–फ़वक़्तन तबदीली हो सके और जदीद चौलेंजेज़ से मुक़ाबला के लिए अफ़राद (व्यक्ति) तैयार हो सकें।

अल्लाह के फ़ज़्ल व करम से जल्द ही इसके बेहतरीन नताइज सामने आए और यहां से ऐसे नाबग़ा–ए–रोज़गार (असाधारण) अहल–ए–इल्म व फ़न पैदा हुए जिन्होंने हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि पूरे आलम–ए–इस्लाम को नदवतुल उलेमा के पैग़ाम से रू–शनास कराया, इसकी नाफ़ेईयत (उपयोगिता) को आम किया और इस तहरीक को बुलंदियों के आला मेयार तक पहुँचाया। इस तहरीक के बानियान पर अगर नज़र की जाए तो तमाम के तमाम ही उस दौर की अहम तरीन शख़्सियात थीं लेकिन ख़ास तौर पर दो हज़रात क़ाबिल–ए–ज़िक्र हैं:

(1) मौलाना मोहम्मद अली मोंगीरी (रह0): आप नदवतुल उलमा के नाज़िम–ए–अव्वल (प्रथम प्रबंधक) थे और सालहा–साल यह ख़िदमत अंजाम देते रहे, ता–उम्र इस तहरीक से वाबस्ता ही नहीं बल्कि सरगर्म–ए–अमल रहे और इसके मफ़ाद को नस्बुल–ऐन (मुख्य लक्ष्य) बनाया। मुल्क भर में दौरे करके तहरीक–ए–नदवतुल उलेमा की इफ़ादियत लोगों को ज़ेहन–नशीन कराई और नदवा के सालाना जलसों के इंतेज़ाम व इंतेज़ामिया की ज़िम्मेदारी ब–खूबी अंजाम देते रहे।

(2) अल्लामा शिबली नोमानी (रह0): नदवतुल उलमा की तारीख़ का एक रोशन तरीन बाब (अध्याय) अल्लामा शिबली नोमानी (रहमतुल्लाह अलैहि) की शख़्सियत भी है, आप ता–दम–ए–हयात (जीवनपर्यंत) अपनी बालिग़–नज़री और दीन व दुनिया के अमीक़ (गहरे) मुताले की रोशनी में इस तहरीक की बक़ा व तरक़्क़ी के लिए कोशां व परेशां रहे। आप दारुल उलूम नदवतुल उलेमा के मोअतमद–ए–तालीम (शिक्षा सचिव) भी रहे और आपके दौर–ए–मोअतमदी में दारुल उलूम से वो लायक़ व फ़ायक़ उलेमा निकले जिन्हें इल्म व अमल की दुनिया में हमेशा याद रखा जाएगा। आप ही के ज़माना–ए–मोअतमदी में दारुल उलूम के सालाना इज्लास–ए–आम में तलबा (छात्रों) के दारुल उलूम की सलाहियतों का मुज़ाहिरा किया गया जिसमें अरबी व उर्दू तक़ारीर और अरबी क़साइद वग़ैरह पढ़े गए जिसकी वजह से नदवतुल उलेमा को मुसलमान–ए–हिंद का मज़ीद एतमाद हासिल हुआ और इस इक़दाम के खुश–आइंड नताइज सामने आने का यक़ीन लोगों के दिलों में मुस्तहकम (मज़बूत) हुआ।

आपके इल्मी कारनामों पर नज़र डाली जाए तो "सीरत–उन–नबी (स0अ0व0)" आपकी तस्नीफ़ी ज़िंदगी का सबसे बड़ा मज़हर और सबसे क़ीमती सरमाया है मगर अफ़सोस कि आपने इसका कुछ ही हिस्सा क़लम–बंद किया था कि दाई–ए–अजल को लब्बैक कहना पड़ा (देहांत हो गया) और आपके इस अधूरे काम को आपके लायक़ व फ़ायक़ शागिर्द अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी (रह0) ने मुकम्मल कियझं

इसी तरह आपकी एक और मायनाज़ किताब "अल–फ़ारूक़" है जो उस ज़माने के बहुत से फ़ित्ना–परवरों के फ़ित्ने और शर–अंगेज़ों के शर के नतीजे में पैदा होने वाले शुकूक व शुबहात का बेहतरीन इज़ाला और सद्दे–बाब (समाधान) है।

फ़रज़ंदान–ए–नदवा में गो सैकड़ों नाम आसमान–ए–इल्म व फ़न पर ताबां व दरख़्शां (चमकते हुए) सितारों के मानिंद चमक रहे हैं लेकिन ख़ास तौर से दो शख़्सियात क़ाबिल–ए–ज़िक्र हैं:

(1) सैयद–उत–ताइफ़ा अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी (रहमतहुल्लाह अलैहि): आप अल्लामा शिबली नोमानी के बाद उनके जानशीन (उत्तराधिकारी) और दारुल उलूम नदवतुल उलेमा के मोअतमद–ए–तालीम मुक़र्रर हुए और पूरे नज़्म व नस्क़ (प्रबंधन) के साथ इस

तहरीक को लेकर आगे बढ़ते रहे।

आपको ज़बान व अदब पर मुकम्मल कुदरत के साथ–साथ फ़िक्री तवाज़ुन व एतदाल, दीनी बसीरत, दूर–अंदेशी व बारीक–बीनी, सीरत व सवानेह का गहरा मुताला व आला ज़ौक़ हासिल था। आपकी हुज़ूर अकरम (स0अ0व0) की हयात–ए–तय्यिबा, उस ज़माने के हालात, लोगों के तौर–तरीक़, उनकी तबीअत व मिज़ाज और उस वक़्त की क़ौमों के दीन व मज़हब (धर्मों), उनमें राइज आदात व रसूमात, उनकी नज़र में जज़ीरतुल–अरब की हैसियत और इसी तरह हुज़ूर अकरम (स0अ0व0) की बेअसत (पैग़म्बरी) से मुतअल्लुक़ तमाम पहलुओं पर मुकम्मल नज़र थी।

चुनांचे "सीरत–उन–नबी (स0अ0व0)" जिसकी इब्तिदा आपके उस्ताद अल्लामा शिबली नोमानी ने की और आपको इसकी तकमील की वसीयत फ़रमाई थी, आपकी वो मअराकातुल–आरा (मशहूर) किताब है जिसमें आपने सीरत के बहरे–ज़ख़्ख़ार (अथाह समंदर) में ग़ोता–ज़नी करके वो जवाहर–पारे (मोती) बरामद किए जिन पर आम सीरत–निगारों की नज़र भी नहीं जाती।

आपकी इल्मी लियाक़त का अंदाज़ा इससे भी लगाया जा सकता है कि 1907 ई. के इज्लास–ए–अताए–सनद में, जो दारुल उलूम से आपकी फ़राग़त (स्नातक) का साल था, आपने इज्लास में शरीक लोगों की जानिब से मुंतख़ब करदा मौज़ू "हिंदुस्तान में इस्लाम की इशाअत क्योंकर हो?" पर ऐसी दिलनशीं व पुर–मग़्ज़ तक़रीर की कि हर तरफ़ से अहसन्त व आफ़रीन की सदाएं बुलंद होने लगीं और आपके उस्ताद अल्लामा शिबली नोमानी (रह0) ने जोश–ए–मसर्रत में अपना उमामा (पगड़ी) आपके सर पर रख दिया।

(2) मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना अबुल हसन अली हसानी नदवी (रह0): चमनिस्तान–ए–नदवा का एक और गुल–ए–सरसब्ज़ (प्रतिभाशाली व्यक्ति) जिसकी खुशबू से इस गुलशन–ए–इल्म व फ़न को बल्कि आलम–ए–इस्लाम को एक नई ताज़गी फ़राहम हुई, अहल–ए–अरब व अजम जिसकी निकहत (सुगंध) से बहरामन्द (लाभान्वित) हुए वो मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैयद अबुल हसन अली हसानी नदवी (रह0) की ज़ात–ए–आली थी।

बचपन ही में आपको मुताले का शौक़ दामन–गीर हुआ और यह दिलचस्पी बढ़ती चली गई। कम–उम्री में ही आपने सीरत की कई किताबों का मुताला कर लिया जिसके नतीजे में हुज़ूर अकरम (स0अ0व0) की मोहब्बत, आपकी सुन्नतों की मुकम्मल तौर पर पैरवी करने, आपके लाए हुए दीन की तामीर व तरक़्क़ी की ख़ातिर अपने आप को खपा देने, इस्लाम के निज़ाम–ए–हयात को दुनिया के हर फ़लसफ़े से अफ़ज़ल व बरतरी क़रार देने और इसके यक़ीन को उम्मत–ए–मुस्लिमा के ज़ेहन व दिमाग़ में रासिख़ (मज़बूत) करने का अज़्म (संकल्प) दिल में शोला–ज़न हुआ। आपका यह जज़्बा, इसकी राह में आपकी जद्दोजेहद और वसीअ मुताला आपकी तस्नीफ़ "माज़ा ख़सिरुल आलम बि–इंहितातित मुस्लिमीन" (मुसलमानों के पतन से दुनिया का क्या नुक़सान हुआ) की शक्ल में रौनुमा हुआ। इस किताब ने आलम–ए–इस्लाम को झकझोर कर रख दिया। मग़रिबी अफ़कार का ज़ोर तोड़ा और मुसलमानों की नीम–मुर्दा (अधमरी) इस्लामी ग़ैरत व हमीय्यत को जिला बख़्शी (जीवित किया)। इसके अलावा आपकी कई किताबें अरबी व उर्दू में मौजूद हैं जिनकी तादाद 500 से मुतजाविज़ (अधिक) है।

नदवा से आपका तअल्लुक़ फ़िक्री व जज़्बाती होने के साथ–साथ ख़ानदानी भी था। आपके वालिद–ए–मोहतरम नदवतुल उलेमा के नाज़िम रहे और आपके बिरादर–ए–अकबर (बड़े भाई) 30 साल तक ओहदा–ए–निज़ामत पर फ़ाइज़ रहे और उनके बाद मुत्तफ़क़ा (सर्वसम्मति) तौर पर आप नाज़िम–ए–नदवा मुंतख़ब हुए।

यह बात कहना किसी क़दर मुबालग़ा (अतिशयोक्ति) नहीं होगा कि नदवतुल उलेमा को जितनी शोहरत आपके ज़माने में मिली और जिस क़दर अरब मोमालिक में इसको मक़बूलियत हासिल हुई वो किसी और दौर में नहीं हुई जिसका शाहिद सन 1975 ई. में मुनअक़िदा 85 साला वो तारीख़ी इज्लास–ए–आम था कि जिसमें हिंद व बैरून–ए–हिंद (देश और विदेश) के मशाहीर (प्रसिद्ध) अहल–ए–इल्म व दानिशवरान मौजूद थे।

नदवा की तारीख़ में ऐसी बेशुमार शख़्सियात गुज़री हैं कि जिनके कारनामों को दर्ज किया जाए तो दफ़्तर के दफ़्तर सियाह हो जाएं (किताबें भर जाएं) लेकिन यहां सिर्फ़ उन हज़रात का ज़िक्र है जिनको मुख़्तलिफ़ वुजूहात की बिना पर अपने–अपने दौर में ख़ास इम्तियाज़ (विशेष स्थान) हासिल रहा।

आसान दीन मुश्किल ज़िन्दगी

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

फ़ारान की चोटियों से जब इस्लाम का सूरज तुलू (उदय) हुआ और आप (स0अ0व0) ने हक़ की निदा (आवाज़) लगाई तो आप (स0अ0व0) पर उस वक़्त का सड़ा हुआ समाज जो इल्ज़ामात (आरोप) लगा सकता था, वो सब लगाने की आख़िरी हदें पार कर दी गईं। जब कि उस वक़्त के अहल–ए–अरब (अरब वासियों) की सिद्क़–बयानी (सच्चाई) और रास्त–गोई ज़र्बुल–मसल (मिसाल) थी, मगर फिर भी दुश्मनी में वो इस हद से गुज़र गए कि आप (स0अ0व0) को सब कुछ कहा। उन्होंने आप (स0अ0व0) को झूठ गढ़ने वाला कहाः "वो (काफ़िर) कहते हैं बेशक तुम ही तो गढ़–गढ़ कर लाने वाले हो।" (अन्नहलः 101)

ज़रा ग़ौर करें कि झूठी बात गढ़ने वाला उसे कहा जा रहा है जिसकी नुबूव्वत से क़ब्ल (पहले) चालीस साला ज़िंदगी दरोग़–गोई (झूठ) से पाक है और पूरा जज़ीरतुल–अरब उसकी सच्चाई और अमानतदारी का क़ायल है। क्या हक़ की सदा लगाने वाले महबूब–ए–दो–आलम (स0अ0व0) का कलेजा मारे दर्द व अलम (दुख) के न फटा होगा?!

उन्होंने आप (स0अ0व0) को मजनूँ यानी दीवाना या पागल क़रार देने की भी मज़्मूम (निंदनीय) हरकत कीः "यह तो पागल सा आदमी मालूम होता है।" (अल–मोमिनूनः 25)

ज़रा सोचें कि दीवानगी का इल्ज़ाम उस ज़ात–ए–बाबरकत पर लग रहा है जिसकी ज़ात सरापा हिकमत व समझदारी थी और जिसके नफ़्स–ए–वजूद से बाज़ (कुछ) वो मसाइल मिनटों में हल हो जाते थे जो बमुश्किल बड़े–बड़े क़ाबिल अफ़राद (व्यक्तियों) से हल न होते। नौज़ुबिल्लाह! अगर इस दावे में कुछ दम होता तो क्या आप बेअसत (नबुव्वत) से क़ब्ल एक कामयाब ताजिर (व्यापारी) साबित होते और क्या पूरे मक्का की अमानतें आपके पास हुआ करतीं?! मगर फिर भी इस साफ़–सुथरे रिकॉर्ड के बावजूद यह सुनकर किस इंसान का जिगर हुज़्न व मलाल (शोक) से शक़ (टुकड़े) न होगा?!

आप (स0अ0व0) की ज़बां–दानी और फ़साहत व बलाग़त (वाक्पटुता) नुबूव्वत से पहले तस्लीम–शुदा (स्वीकार की हुई) थी, ताहम यह भी सब जानते थे कि आप पढ़ना–लिखना नहीं जानते हैं, तो फिर उस वक़्त क्या हाल हुआ होगा जब आपकी बातों को परेशां–ख़्वाबियां (बुरे सपने) बताया गया या शायरी का इल्ज़ाम लगाया गया, यह ताना आप (स0अ0व0) के लिए हतक–ए–इज़्ज़त से कम न था?!

"वो बोले यह तो परेशां–ख़्वाबियां हैं बल्कि ख़ुद उन्होंने गढ़ लिया है, नहीं! यह तो शायर हैं।" (अल–अम्बियाः 5)

आप (स0अ0व0) को ब–ख़ूबी इल्म था कि आप (स0अ0व0) ही महबूब–ए–रब्बुल आलमीन और अफ़ज़ल–ए–रसूल (सर्वश्रेष्ठ रसूल) हैं, तो फिर उस वक़्त ब–हैसियत–ए–बशर (मानव होने के नाते) क्या आलम हुआ होगा जब मदीना के चंद औबाशों (दुष्टों) ने शहर–बदरी का नारा–ए–बद बुलंद किया था और कायनात की सबसे पाकीज़ा व मोहतरम शख़्सियत को नौज़ुबिल्लाह ज़लील कहकर ख़ुद अपनी ज़लालत (नीचता) का हद दर्जा सुबूत दिया था, कुरआन–ए–मजीद में इर्शाद हैः"वो कहते हैं कि अगर हम मदीना लौटे तो वहां जो इज़्ज़त वाला है वो ज़िल्लत वाले को निकाल बाहर करेगा।"

आप ख़ुद ग़ौर करें जब इंसानियत के दुश्मन रहमत–ए–दो–आलम (स0अ0व0) पर कीचड़ उछालते–उछालते थक गए और उनके तरकश के तमाम तीर तक़रीबन ख़त्म हो गए, तो उस वक़्त उन्होंने मोहसिन–ए–इंसानियत (स0अ0व0) के हरम (परिवार/पत्नियों) को भी न बख़्शा और जो इल्ज़ाम आप (स0अ0व0) पर बराह–ए–रास्त (सीधे) लगाना नामुमकिन था, वो इल्ज़ाम आप (स0अ0व0) के हरम पर

कसा और इस तरह अपने दिल की प्यास बुझाने की कोशिश की। क्या इस बदतरीन हरकत का आप (स0अ0व0) पर ब–हैसियत–ए–बशर कोई फ़र्क़ न पड़ा होगा? क्या आप (स0अ0व0) ब–हैसियत–ए–इंसान कबीदा–ख़ातिर (दुखी) न हुए होंगे? क्या आप (स0अ0व0) के अंदर रद्दे–अमल (प्रतिक्रिया) की कोई कैफ़ियत या जज़्बात पैदा नहीं हुए होंगे? क्या आप (स0अ0व0) ने एक भरपूर और ताक़तवर जवाब देने की कोशिश के लिए कभी नहीं सोचा होगा? क्या आप (स0अ0व0) ताक़त में कम थे? क्या आपके साथ जां–निसार सहाबा की एक वफ़ा–शआर जमात न थी? आप तो एक ऐसी क़ुदसी (पवित्र) जमाअत के सरबराह (प्रमुख) थे जिसे आप (स0अ0व0) के पसीने और लुआब–ए–दहन (थूक) तक की तौहीन गवारा न थी, तो फिर यह कैसे मुमकिन हुआ कि नबी (स0अ0व0) के हरम पर इल्ज़ाम लगा और आपने एक इशारा देकर ज़ालिमों का क़ल्अ–क़मअ (सफ़ाया) नहीं किया।

इसका जवाब बजा तौर पर यही है कि ब–हैसियत–ए–इंसान यक़ीनन बहुत कुछ ख़्यालात आए होंगे और आप (स0अ0व0) भी परेशान होते थे और यह किसी मुहक़्क़िक़ (शोधकर्ता) का दावा नहीं बल्कि क़ुरआन ही की तसरीहात (स्पष्टीकरण) से साफ़ अंदाज़ा होता है कि बाज़ औक़ात आप (स0अ0व0) दिल मसोस–मसोस कर और कुढ़–कुढ़ कर रह जाते थे:

"और आप न उन पर ग़म करें और न उनकी चालों से दिल को छोटा करें।" (अन्नमलः 70)

बाज़ मवाक़े (अवसरों) पर ऐसा महसूस होता है कि जब पानी सर से ऊंचा हो गया तो मज़ीद ताक़तवर अंदाज़ में तसल्ली दी गई, फ़रमायाः

"और ज़ालिम जो कर रहे हैं उससे अल्लाह को हरगिज़ ग़ाफ़िल मत समझना, वो तो उनको उस दिन तक मोहलत दे रहा है जिसमें उनकी आँखें पथरा जाएँगी।" (अल–इब्राहीमः 42)

यक़ीनन ये आयात इस बात पर दलालत करती हैं कि रहमत–ए–दो–आलम (स0अ0व0) का दिल कबीदा–ख़ातिर होता था। आप (स0अ0व0) कामों में रुकावटें पड़ते हुए आज़ुर्दा–ख़ातिर (उदास) होते थे, ज़ेहनी सुकून और ज़ाती राहत मुतास्सिर (प्रभावित) होती थी मगर यही तो कमाल–ए–इंसानियत है कि तमाम जज़्बात एक तरफ़ और तमाम इंसानी व फ़ितरी तक़ाज़े एक तरफ़ लेकिन हुक्म–ए–रब्ब और अल्लाह की इताअत (आज्ञापालन) एक तरफ़। आप ग़ौर करें कि वो रहमत–ए–दो–आलम (स0अ0व0) जिनकी अदना तकलीफ़ भी रब्ब–ए–कायनात को गवारा न थी, मगर फिर भी उसने अपने नबी को इन मराहिल (चरणों) से गुज़ार कर बाद वालों के लिए यह नमूना (उदाहरण) दे दिया कि इसी तरीक़े को इख़्तियार करके कामयाबी हासिल करना है।

अल्लाह तआला ने कहीं भी औबाशों का जवाब उन्हीं की ज़बान में देने या अपने किसी भी रद्दे–अमल के इज़हार की बात नहीं कही बल्कि हर जगह हिकमत व मस्लहत को पेश–ए–नज़र रखा और मिसालों और बदीही हक़ाइक़ (स्पष्ट सच्चाइयों) के ज़रिये यह बात साफ़ की कि मुश्किलात उन्हीं को पेश आती हैं जो हक़ की ख़ातिर जीते हैं और कांटे उन्हीं को चुभते हैं जो ख़ारदार (काँटेदार) रास्तों पर चलते हैं।

"क्या तुम समझते हो कि जन्नत में (यूँ ही) दाख़िल हो जाओगे और तुम पर वो हालात नहीं गुज़रेंगे जो तुम से पहलों पर गुज़र चुके? सख़्ती और तंगी का उनको सामना करना पड़ा और उनको झकझोरा गया यहाँ तक कि रसूल और उनके साथ ईमान लाने वाले कह उठे कि आख़िर अल्लाह की मदद कब आएगी? सुन लो! यक़ीनन अल्लाह की मदद क़रीब ही है।" (बक़रहः 214)

क़ुरआन–ए–मजीद की आयात और सीरत का मुताला हमें यह दर्स (सबक) देता है कि तमाम दुश्मन ताक़तों और विरोधियों की हरज़ा–सराईयों (बकवास) का फ़ैसला–कुन जवाब पूरे जज़्बा–ए–एहतिसाब के साथ "सब्र" जैसी अज़ीम सिफ़त (गुण) में मुज़्मिर (छिपा) है। सब्र एक ऐसी चीज़ है जो विरोधियों व दुश्नाम–तराज़ों (गाली देने वालों) को थका देता है। उनकी हिम्मत और हौसले पस्त कर देता है। उनकी अहमियत घटा देता है और इंसानी समाज में रफ़्ता–रफ़्ता (धीरे–धीरे) उनको ज़लील व ख़्वार करता चला जाता है। इसके बरअक्स साबिर (सब्र करने वाला) व मोमिन शख़्स अपने इस बुनियादी वस्फ़ (गुण) की बिना पर मंज़िल ब–मंज़िल आगे बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि सुर्ख़–रू (कामयाब) हो जाता है।

सब्र की तालीम देते हुए इर्शाद हैः

"और आप सब्र कीजिए और अल्लाह ही की मदद से आप सब्र कर सकेंगे।" (अन्नहलः 127)

मलफ़ूज़ात-दाई-ए-इस्लाम

आप (स०अ०व०) की बशरियत और रिसालत पर ईमान:

फ़रमाया: "कुरआन मजीद में अल्लाह तबारका व तआला का इरशाद है:

هل كُنتُ إلاَّ بَشَراً رَّسُولاً

"मैं क्या हूँ, एक इंसान हूँ जिसे रसूल बनाया गया है।" (अल-इसरा: ९३)

कुरआन की यह आयत हमें साफ़ पैग़ाम देती है कि अल्लाह के रसूल (स०अ०व०) को एक ही समय में इंसान और रसूल मानना दोनों ज़रूरी है। किसी एक चीज़ को न मानने की सूरत में आदमी गुमराह हो जाएगा। इसमें शुब्हा नहीं कि आप (स०अ०व०) बशर और रसूल थे। ताहम यह समझना भी निहायत ज़रूरी है कि आप (स०अ०व०) कोई आम बशर या आम रसूल नहीं थे बल्कि आप (स०अ०व०) सब इंसानों में सबसे बेहतर और सब रसूलों में सबसे बेहतर थे।"

मक़ाम-ए-नुबूव्वत का इम्तियाज़:

फ़रमाया: "बाज़ लोग औलिया अल्लाह को अम्बिया के मक़ाम तक पहुँचा देते हैं जबकि नुबूव्वत एक आला तरीन (सबसे ऊँचा) मक़ाम है। मक़ाम-ए-नुबूव्वत से मक़ाम-ए-विलायत का कोई जोड़ नहीं। मक़ाम-ए-नुबुव्वत तो वह है कि नबी की एक नज़र-ए-कीमिया असर (तक़दीर बदल देने वाली नज़र) से ऊँटों के चराने वाले दुनिया की रहनुमाई का फ़रीज़ा अंजाम देने लगते हैं और सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) जैसी मुक़द्दस जमाअत वजूद में आती है जिनके मुक़ाबले में औलिया अल्लाह की कोई हैसियत नहीं। कुरआन करीम में सहाबा के मुताल्लिक़ साफ़ इरशाद है: رضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمْ وَرَضُوا عَنْهُ

"अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वह अल्लाह से राज़ी।"

माल की मोहब्बत का मर्ज़:

फ़रमाया: "आजकल हर एक माल की मोहब्बत का असीर (क़ैदी) है और बुरी तरह पैसे के पीछे भाग रहा है। मानो इस वक़्त तमाम हक़ीक़तें एक हक़ीक़त के सामने झुकी हुई हैं और वह एक हक़ीक़त है पैसा, जबकि सबसे बुरी बला पैसे की यही मोहब्बत है। इसीलिए इस्लाम में सबसे ज़्यादा ख़र्च करने (दान-पुण्य करने) पर ज़ोर दिया गया है।"

इन्दल्लाह (अल्लाह के नज़दीक) क़बूलियत-ए-हज की एक अलामत:

फ़रमाया: "हज जैसी अज़ीम इबादत की अल्लाह के नज़दीक मक़बूलियत (स्वीकार होने) की एक खुली दलील यह भी है कि इसके बाद आदमी के अन्दर परहेज़गारी आ जाती है और अगर नऊज़ुबिल्लाह (अल्लाह की पनाह) क़बूल होने की सनद अता न हो तो कई बार इसके बाद सूरत-ए-हाल मजीद (और ज़्यादा) बिगड़ जाती है।"

सदक़ा किसे दें

फ़रमाया: "सदक़ा करने का अच्छा तरीक़ा यह है कि किसी ऐसे ग़रीब व फ़क़ीर आदमी को तलाश करके ख़ामोशी से दिया जाए जो शर्म के मारे किसी से नहीं माँगता।"

कलिमा तय्यिबा की अहमियत व ज़रूरत:

फ़रमाया: "जिस तरह बैंक में बग़ैर अकाउंट खोले पैसे जमा नहीं कर सकते, इसी तरह सच्चे दिल से कलिमा तय्यिबा का क़ाइल हुए बग़ैर इस्लामी इबादतें भी अल्लाह के नज़दीक मक़बूल नहीं होती हैं और इंसान के नेक आमाल का आख़िरत में उस वक़्त तक कोई फ़ायदा न होगा जब तक कि वो हक़ीक़ी कलिमा गो (ईमान लाने वाला) न हो।"

ज़ब्त-ओ-पेशकश: मुहम्मद अज़ीमुद्दीन नदवी

हज़रत मौलाना सैय्यद अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 07 ❋ July 2026 ❋ Volume: 18

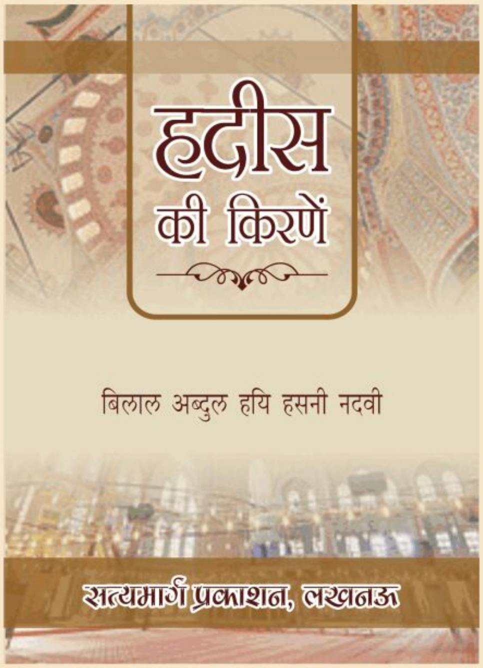

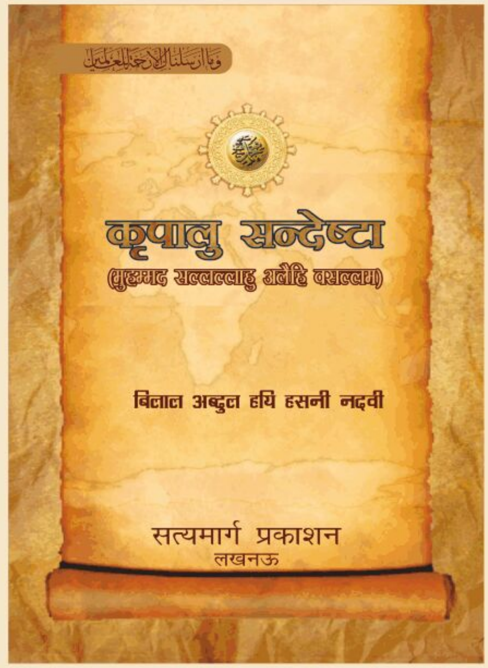

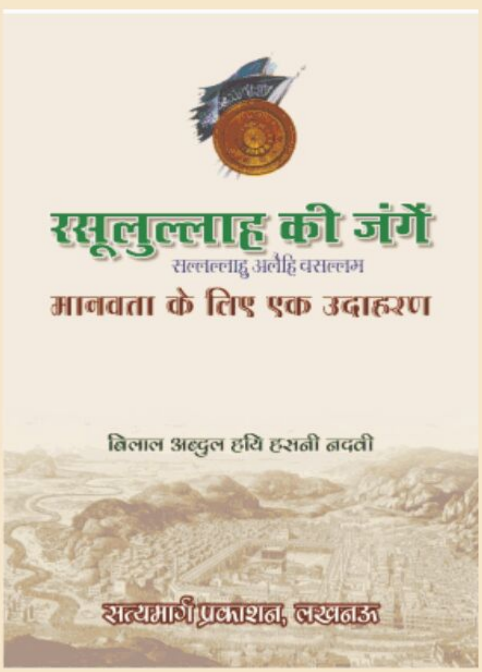

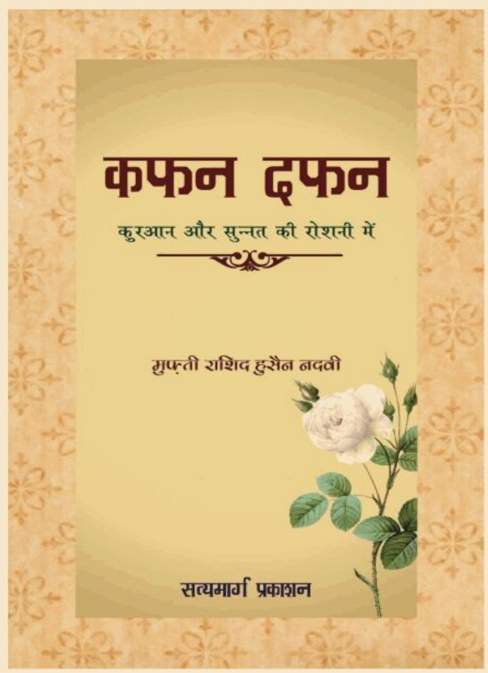

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.